www.kissekahani.com

पराग

भारतीय बच्चों का प्रिय मासिक

अक्तूबर 1971

- आभार : डा. देशदीपक

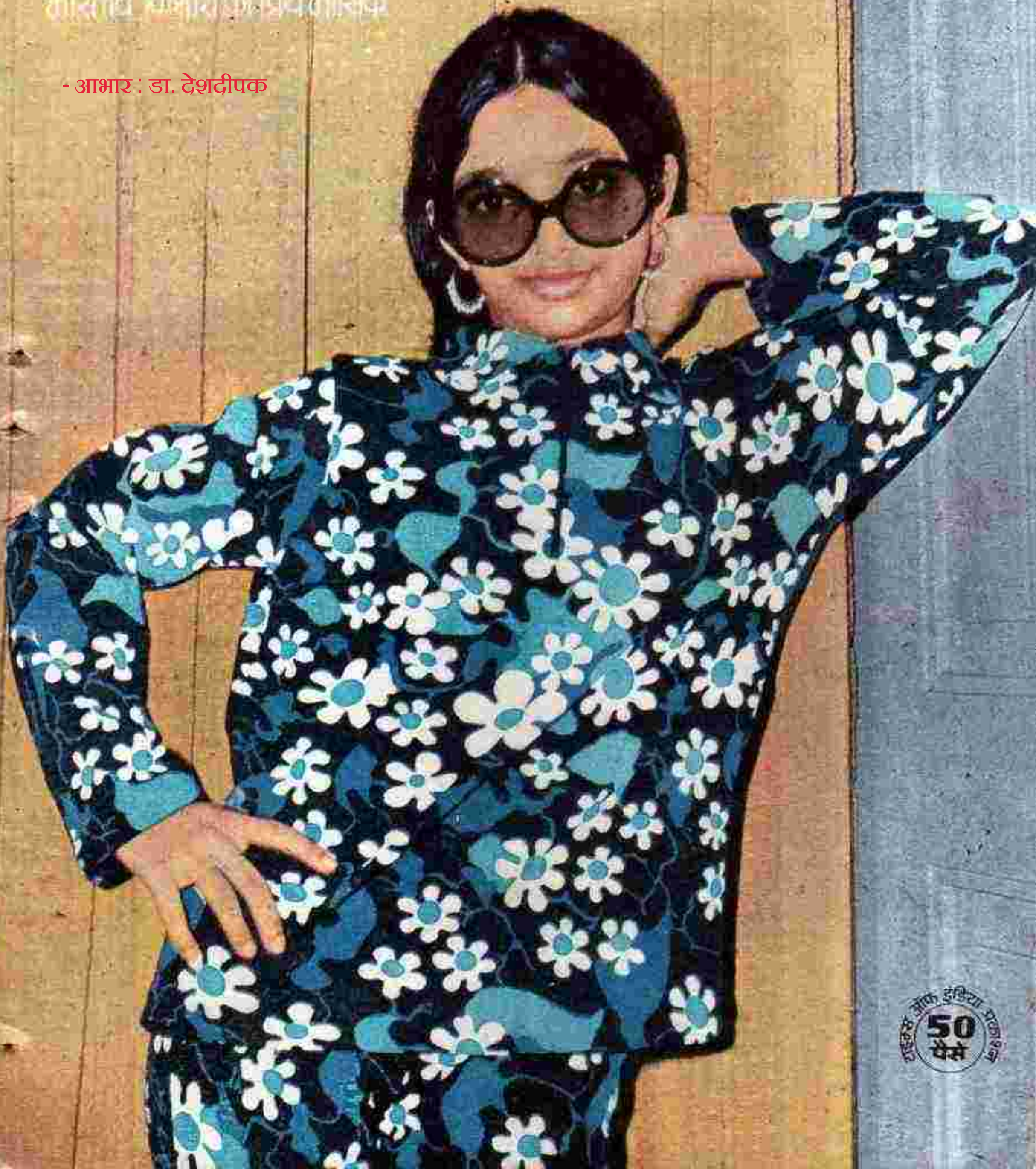

50 पैसे

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिटास-L. 60-140 HI

www.kissekahani.com

संपादकीय

"हाय, हम तो नंगे!"

भारतीय धर्मप्राण मस्तिष्क पर 'सैक्स' उस समय से ही एक 'भूत' की तरह सवार रहा है, जब से यौनमूलक धार्मिक दर्शनों से हटकर मानव-समाज ने धार्मिक धारणाओं को आध्यात्मिक साधना की तरफ मोड़ा. भोगमूलक धर्म-दर्शन योग-मूलक हो गया. कहीं-कहीं इसने मिश्रित रूप धारण किया, और कहीं-कहीं कट्टरपंथी. योग और भोग में मौलिक बैर है. कट्टरपंथी पंडितों ने आरंभ से ही निषेध का रास्ता अपनाया. स्वभावत: इस निषेध की चपेट में सबसे पहले वे लोग आते थे, जो मन-मस्तिष्क और शरीर से या तो कमज़ोर थे, या फिर आयु की दृष्टि से अपरिपक्व थे. 'भोग' से 'भूत' की तरह डरो! —यही कट्टरपंथी पंडितों का मूल-मंत्र रहा. किंतु इस मंत्र की साधना बड़ी कठिन थी. फलस्वरूप तरीका यह अपनाया गया कि जिस चीज़ का ज्ञान हो न हो, उसके फेर में पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता—इसलिए तत्संबंधी ज्ञान से भोले प्राणी को वंचित रखो! योरोपीय दर्शन भी कुछ ज्यादा पीछे नहीं रहे.

आदम और हौवा अदन के बाग में मस्ती के साथ नंगे घूमते थे. न कोई पिता, न कोई अलाबला—सहोदर भाई-बहन की तरह! खुदा भी खुश, वे भी खुश. पेड़ पर लटका एक फल ऐसा था, जिसकी तरफ देखने की भी सख्त मनाही थी. 'शैतान' ने उकसाया, हौवा ने फैल मचाया, और दोनों ने ही जब उस फल को चखा, तो चिल्ला उठे—"हाय, हम तो नंगे!"

शैतानी ज्ञानदान के इस प्रथम प्रयोग से इनसान की मुसीबतें शुरू हो गईं, और उद्जन बम की अपार संहारकारी शक्ति तक आ पहुंची. किंतु प्रगतिशील मानव-मस्तिष्क ने स्वयं 'ज्ञान' को कभी नहीं कोसा. वह ज्ञान के दूसरे पक्ष—संहारकारी पक्ष—से बराबर जूझता रहा. . .नए-से-नए ज्ञान के ही द्वारा, क्योंकि यह दूसरा पक्ष और कोई नहीं, स्वयं 'अज्ञान' ही था!

ज्ञान ही प्रगति की शर्त है, और वह सही समय पर मिलना चाहिए, सही आयु में सही ढंग से मिलना चाहिए—अन्यथा अज्ञान हावी हो जाता है, और भारी गोलमाल पैदा कर देता है. किशोर आयु इस ज्ञानदान के लिए सही आयु है या नहीं, इस बारे में विचारकों में कभी दो मत नहीं रहे.

किंतु लगता है कि भोग को स्वयं शास्त्रीय पद्धति से अंगीकार न कर पाने के कारण बड़ों में जो 'गिल्टी कौंशेंस' (अपराध-चेतना) उत्पन्न हो जाती है, उसके कारण एक अजीब-सी शरमाशरमी और संकोच नई पीढ़ी को इसका ज्ञान कराने में रहा है. दूसरी ओर, आज के जिज्ञासु किशोर अपनी आयु के साथ सहसा ही उत्पन्न हो जाने वाले इस उत्तर-विहीन प्रश्न को लिये कहीं तो विदेशी हिप्पियों के आगे-पीछे भागते नज़र आते हैं, कहीं उत्तेजक ट्विस्ट, पौप संगीत, डिस्कोथीक का सहारा ढूंढते हैं, कहीं फिल्मी अभिनेताओं व अभिनेत्रियों के परदे पर दिखाई देने वाले रूपायित जीवन को अपना आदर्श बना लेते हैं. जीविका अर्जन करने के 'तनाव' में और अधिक फंसते जाते माता-पिताओं को कभी उनकी ओर समुचित ध्यान देने की फुरसत नहीं मिलती, और विद्यालय उनके व्यक्तिगत जीवन में कोई दखल देना नहीं चाहते—कौन अपने 'सैंडल' से हट कर एक नया पचड़ा मोल ले?

इस जमघट में लगता यही है कि यदि किशोरों को—और इस माने में किशोरियों को भी—ज्ञान के इस 'वर्जित फल' को न चखने का कोई खुदाई हुक्म नहीं मिला है, तो इसकी विधिवत् शिक्षा भारतीय विद्यालयों में ही दी जानी चाहिए—या नहीं?

'पराग' के दिसंबर '71 के अंक में 'वर्जित फल' स्तंभ के अंतर्गत इस परिचर्चा का श्रीगणेश होगा. देश के किशोर-जीवन की अपार ऊर्जा के प्रति आस्था रखने वाले सभी लेखक, राजनीतिज्ञ, गुरुजन, तथा स्वयं किशोर-किशोरियां इस गंभीर परिचर्चा के लिए सादर-सप्रेम आमंत्रित हैं. विचार संक्षेप में हों तो बेहतर है. ●

पराग

162 वां अंक

अक्तूबर 1971

कहां-क्या?

सरस कहानियां :

सी. आई. डी. नं. 000 : मालती जोशी 4

जवाब का सवाल : प्रदीपकुमार 7

रूम-मेट : सुषमा मल्होत्रा 10

नहले पर दहला : अवतार सिंह 20

एक पार्टी समाजवादी : सत्यस्वरूप दत्त 23

जुर्माना : शाहिद अब्बास अब्बासी 32

सरल कविताएं :

उल्टी खबरें : तारादत्त निर्विरोध 43

मक्खीचूस : सीताराम गुप्त 43

लाओ मोटरगाड़ी : बादराम 'रसद्र' 43

मजेदार कार्टून-कथाएं :

पुराणमल-नवकुमार : शेहाब 14

छोटू और लंबू : शेहाब 26

बुद्धू राम : आबिद सुरती 38

परिचर्चा :

'वर्जित फल'—जासूसी उपन्यास :
डा. कैलाश नारद, शाहिद अब्बासी 28

एक आकलन :

बंबई के किशोर (निम्न वर्ग) : डा. देवेश ठाकुर 16

फ़िल्मी कोना :

मुमताज से एक भेंटवार्ता : हरीश तिवारी 49

स्थायी स्तंभ :

आप के पत्रों से : 25

कहो कैसी रही : किशोरीरमण टंडन 38

शीर्षक प्रतियोगिता—32 : 39

रंग भरो प्रतियोगिता—112 : 41

उद्धरण प्रतियोगिता—36 : 44

मुखपृष्ठ :

अमीना मुकरी (परिचय पृष्ठ 13 पर)
छाया : चित्रशाला

संपादकीय कार्यालय :
१० दरियागंज, दिल्ली-६

व्यवस्था, विज्ञापन व प्रसार कार्यालय :
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-१

संपादक : आनंदप्रकाश जैन

★ मालती जोशी

"भई, मैं जरा आज जल्दी में हूं. लंच-टाइम में आकर खाना खा लूंगा." पापा ने सब्जी का थैला रसोई में रखते हुए कहा.

"तो फिर जरा जल्दी लौटना था. आप तो बस जहां जाते हैं वहीं के होकर रह जाते हैं." मम्मी रोटी बेलना भूलकर शुरू हो गई.

चित्रा सब्जी के थैले में से बेर बीनने में मगन थी. पर इस नोंकझोंक के कारण उसका ध्यान बंटा और उसने पापा की ओर गौर से देखा, फिर बोली—"मैं बताऊं, मम्मी, पापा मनोज चाचा के घर खाना खाकर आए हैं."

एक भेदभरी कहानी

www.kissekahani.com

सी. आई. डी.

"क्यों, जी, और यहां मैं सुबह से रसोई में घुसी हुई हूं कि . . ." मम्मी का पारा धीरे-धीरे गरम होता जा रहा था.

"अरे तुम भी उसकी बातों में आ जाती हो. मनोज के यहां जाने की सुबह-सुबह मुझे फुरसत भी मिलती है? मैं तो मेहरा साहब के साथ वह केस डिस्कस कर रहा था . . ."

"पापा, क्या मेहरा अंकल के यहां भी कुत्ता है?" चित्रा ने बीच ही में पूछ लिया.

"नहीं तो, बेटे, क्यों?"

"आपकी पतलून पर ये पंजों के निशान कैसे हैं? मनोज चाचा के टाइगर के हैं न? इतनी खराब आदत है उसमें कि जो भी उनके यहां जाता है उसी पर चढ़ बैठता है. परसों मेरी नई की नई फ्रॉक खराब कर दी." चित्रा ने मुंह फुलाकर कहा, पर पापा का ध्यान अपनी पतलून पर था, जहां दोनों घुटनों पर टाइगर के धूल सने पंजों के निशान लगे हुए थे.

वह खिसियाकर मम्मी से बोले—"भई, तुम्हारी लड़की क्या है, एकदम शरलक होम्स है! जरा-सा झूठ भी नहीं पचने देती. गया था मैं मनोज के यहां . . ."

"और खाना भी खाया था . . . नहीं तो सुबह-सुबह पान क्यों खाया आपने?" चित्रा ने ताली पीटते हुए कहा.

"अब चुप कर, नहीं तो कान खींच दूंगा!" पापा ने बनावटी गुस्से से कहा.

"अब इस बेचारी पर क्या नाराज हो रहे हैं? मम्मी ने हंसकर कहा. पापा की पोल खुलने से वह बड़ी खुश हो रही थी. "आप ही तो हमेशा इसे सिखाते रहते हैं—बेटे, हमेशा आंख-कान खुले रखकर चला करो. अब भुगतिए अपनी शिक्षा का परिणाम!"

"परिणाम तो अच्छा ही है. अब देखो, जो बात तुम्हारी समझ में नहीं आई, उसने एक सेकंड में समझ ली!" पापा ने मम्मी को चिढ़ाते हुए कहा.

"उसकी समझ के क्या कहने हैं! दिनभर मेरा दिमाग चाट जाती है. हम भी कभी छोटे थे, पर अपने मां-बाप को ऐसा परेशान हमने कभी नहीं किया. यह तो जैसे प्रश्नों की झड़ी लगा देती है!"

पापा बोले—"प्रश्न पूछती रहती है, इसी लिए तो उसका दिमाग इतना तेज दौड़ता है. जो बच्चे अपने मां-बाप से कभी कुछ नहीं पूछते, कभी कोई जिज्ञासा नहीं करते, पता है, वे कैसे निकलते हैं बड़े होकर? बस, एकदम तुम्हारी तरह . . .!" पापा शरारती ढंग से मुस्करा रहे थे.

"अब आपको देर नहीं हो रही? जाइए यहां से बाहर . . ." मम्मी ने करीब-करीब उन्हें रसोई से बाहर खदेड़ते हुए कहा.

बेर खाते हुए चित्रा सारा तमाशा देख रही थी. वह समझ गई कि इस समय मम्मी के सामने बैठने में खैरियत नहीं है. वह पापा के पीछे-पीछे रसोई से निकल आई. वह जब तक तैयार होते रहे,

वह उनके आस-पास घूमती रही. उसके छोटे-से दिमाग में दिनभर सवालों का एक हुजूम-सा उमड़ता रहता और एक पापा ही थे जो शांति से उसे हर बात समझा देते थे. इसी लिए वह अक्सर उनके इर्दगिर्द ही डोलती रहती. इस समय भी वह कागज़ बनाने के तरीके से लेकर जूतों के लिए चमड़ा कमाने के ढंग तक—हर बात की जानकारी इकट्ठा कर रही थी. उसने यह भी जानना चाहा कि घड़ी ठीक समय पर अलार्म कैसे दे देती है और यह भी पूछा कि पैन में भरी हुई स्याही बाहर कैसे आ जाती है. पापा बेचारे तैयार भी होते जा रहे थे और उसके प्रश्नों के उत्तर भी दे रहे थे. सहसा अपनी प्रश्न-मालिका रोककर उसने पूछा—"पापा, क्या शाम को स्वीमिंग के लिए जाएंगे?"

"नहीं तो, क्यों?"

"फिर आप के बैग में यह मुलायम-सा क्या दिखाई पड़ रहा है? मैं समझी कि तौलिया है."

पापा ने देखा चित्रा इतनी देर से उनके बैग पर ही कोहनी टिकाए खड़ी हुई है. जहां नरम लग रहा था वहां सचमुच नहाने के कपड़े थे.

उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"मानता हूं तुम्हें! पर अब मेहरबानी करके अपनी मम्मी जी को मत बतलाना, नहीं तो यहीं से 'बैन' लग जाएगा!"

चित्रा ने खुशी-खुशी सिर हिला दिया. मम्मी से छिपाने वाली पापा की इन बातों की राजदां होने में बड़ा मज़ा आता था उसे. उसी समय मम्मी पापा के लिए रूमाल लेकर कमरे में आईं. दोनों सिटपिटा गए. पर मम्मी बेचारी को कुछ पता ही नहीं चला.

"अच्छा, भाई, चलें!" पापा ने बैग उठाते हुए कहा.

"पापा, स्कूटर की चाबी . . ." चित्रा ने याद दिलाई.

"देखा, तुमसे ज्यादा फिक्र है इसे मेरी!" पापा ने मम्मी से कहा. मम्मी ने मुंह चिढ़ा दिया. फिर तीनों के तीनों हंस पड़े. "आज स्कूटर नहीं ले जाऊंगा, बेटे. बस से सीधा रेलवे स्टेशन जाऊंगा".

"क्यों, पापा?"

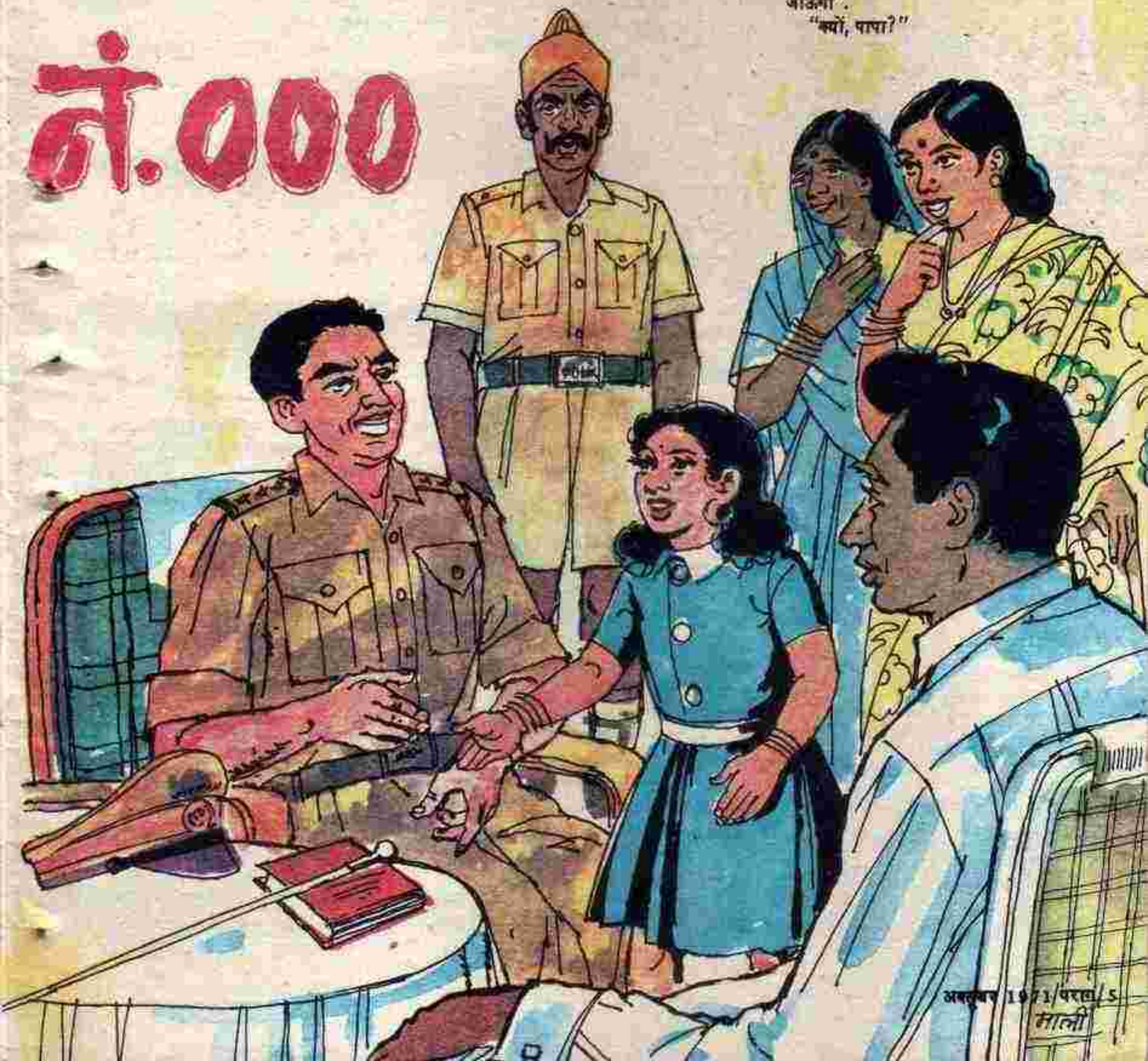

"एक मेहमान आ रहे हैं—सरकारी मेहमान. 11-45 की पठानकोट से आएंगे. उनके साथ टैक्सी में सर्किट हाउस जाना पड़ेगा. स्कूटर का क्या करूंगा? अच्छा, भई, चलें!" कहते हुए पापा खटाखट सीढ़ियां उतर गए.

पापा को 'टा-टा' करती हुई चित्रा काफी देर तक गैलरी में खड़ी रही. आने-जाने वाली गाड़ियों को गिनने में काफी समय निकल गया. उसी समय लाल डाकगाड़ी वहां से गुजरी. चित्रा के मन में शंकाओं का एक तूफान फिर घिर आया. दौड़कर अंदर आई.

"मम्मी . . . . . !"

मम्मी खाना लगा रही थीं. उन्होंने प्रश्नभरी नजरों से देखा.

"मम्मी, यह डाकगाड़ी रोज घर के सामने से निकलती है. फिर यहीं चिट्ठियां क्यों नहीं दे देती. पोस्टमैन को बेकार का चक्कर लगाना पड़ता है."

"चित्रा, पहले खाना खाओ झटपट. ये फालतू बातें बाद में सोचेंगे." मम्मी के इस फरमान से चित्रा बुझ-सी गई. पर खाना शुरू करते ही उसे लगा कि वह कितनी भूखी थी. एक-डेढ़ चपाती खाने के बाद कुछ राहत मिली और उसका दिमाग फिर काम करने लगा.

"मम्मी . . . . . मम्मी. . . . ये रोटियां फूलती क्यों हैं?"

"सेंकते हैं, इसलिए फूलती हैं." मम्मी ने जवाब दिया.

"फिर पापड़ क्यों नहीं फूलता? उसे भी तो सेंकते हैं . . . ."

"तू अब खाना खाएगी या बातें ही करती रहेगी." मम्मी ने चिढ़कर कहा और चित्रा चुप हो गई. मम्मी में यही एक खराब आदत है. कभी ढंग से किसी बात का जवाब नहीं देतीं, बस डांट देती हैं.

●

चित्रा खाना खाकर उठी ही थी कि गंगाबाई आ पहुंची. वह खुश हो गई. गंगाबाई से उसकी खूब पटती थी. जब तक वह बर्तन मलती, चित्रा वहीं बैठकर उससे गप्पें लड़ाती रहती. पर आज उसे मौका ही न मिला. गंगाबाई के आते-आते ही मम्मी ने उसे आड़े हाथों लिया—"गंगाबाई! यह वक्त है तुम्हारे आने का! साढ़े दस बज रहे हैं! सुबह से घर में झाड़ू तक नहीं लगी है. रात के बर्तन अलग पड़े भिनभिना रहे हैं!"

गंगाबाई ने इतना-सा मुंह बना लिया, "क्या करूं, बाई, कल से बुखार में पड़ी हूं. रात खाना तक नहीं बनाया. आज किसी घर नहीं गई हूं. बस, आपके यहां आई हूं."

बस, मम्मी जी एकदम पिघल गईं. उन्होंने बड़े प्रेम से उसकी तबीयत का हाल पूछा, दवाई के बारे में पूछा और फिर गरम पानी के साथ एक एस्प्रो की टिकिया खिला चुकीं, तभी उन्हें चैन आया. कपड़े धोने के लिए मना किया सो अलग.

चित्रा सब सुन रही थी पर उसका समाधान नहीं हो रहा था. आखिर पूछ ही तो लिया—"गंगाबाई, जब तबीयत ठीक नहीं थी तो नहाई क्यों?"

"कहां नहाई हूं, बेबी! आज तो चोटी तक नहीं की!" गंगाबाई ने कराहते हुए कहा.

"फिर यह साड़ी! कल तो तुमने यह साड़ी नहीं पहनी थी."

". . . . . चित्रा, चल आ तेरे बाल बांध दूं. फिर मुझे ढेर सारे काम करने हैं." मम्मी ने आवाज दी. बेमन से ही चित्रा मम्मी के पास जा खड़ी हुई. उसका मन शांत नहीं हुआ था. उसे मालूम था, गंगाबाई चार-चार दिन तक नहीं नहाती थी; कपड़े भी तभी बदलती, जब कहीं बाहर जाना हो या नहाना हो. इसी लिए वह अक्सर उसे गंदी बाई कहकर पुकारती थी.

●

बाल बनाने के बाद, मुंह धोने के लिए वह बॉश-बेसिन पर आई, तो सुना गंगाबाई बर्तन रगड़ते हुए गुनगुना रही है. गंगाबाई और गाना? खासकर बीमार होने पर तो यह और भी असंभव लग रहा था. तभी उसने गंगाबाई की साड़ी पर हल्दी के हाथ लगे देखे और पूछ ही तो लिया—"कल किसकी शादी थी, गंगाबाई?"

"शादी नहीं थी, बेबी, सगाई थी मेरे भानजे की." गंगाबाई ने बताया.

"खूब ढोलक बजी होगी!"

"अरे खूब! . . . . रातभर गीत हुए, बड़ी धूम रही."

"क्यों री, फिर मुझसे झूठ क्यों बोल रही थी कि बुखार आ गया था?" मम्मी ने एकदम गुस्से में कहा, तब गंगाबाई को एकदम होश आया. पर अब क्या हो सकता था. पोल तो खुल ही गई. खीझकर बोली—"बेबी, जाओ, अपनी पढ़ाई करो, स्कूल नहीं जाना है तुम्हें?"

"नहीं जाना. आज हमारी बस बारह बजे आएगी, समझी?" चित्रा ने कहा. उसे खूब हंसी आ रही थी और मम्मी भी गंगाबाई को खूब मजाक बना रही थीं.

तभी दरवाजे की घंटी बजी. चित्रा दौड़कर बाहर पहुंची. स्टूल पर चढ़कर उसने पहले तो बाहर झांका, फिर धीरे से दरवाजा खोला. एक अपटूडेट आदमी सामने खड़ा था.

"बाई साहब हैं?...जरा बुला देना."

वह दौड़कर मम्मी को बुला लाई. उस व्यक्ति ने नमस्ते करते हुए कहा—"मैं शर्मा हूं—रामधन शर्मा. साहब ने दो बोरियां मंगाई हैं."

"बोरियां...? क्यों?"

"गेहूं के लिए. आफिस की गाड़ी मार्केट जा रही थी. साहब ने कहा था घर के लिए दो बोरी गेहूं डलवा लाना; सस्ते मिल जाएंगे."

"हां, और क्या, यहां तो एक सौ बीस से नीचे कोई बात नहीं करता. शहर में ठीक भाव पर मिल सकता है," मम्मी ने कहा. फिर गंगाबाई से बोली कि मचान से दो बोरियां उतार लाए.

"बाई साहब, एक मन मेरे लिए भी मंगवा देना. पहली तारीख पे पैसा दे दूंगी." गंगाबाई ने जाते-जाते कहा.

इस बीच चित्रा गैलरी पर झुकी गाड़ी का अध्ययन कर रही थी. "मम्मी, यह कोई आफिस की गाड़ी थोड़े ही है. यह तो टैक्सी है."

"तुझे कैसे मालूम कि टैक्सी है? यहां भोपाल में तो सारी सब बैक्सियां कार जैसी लगी हैं."

"वाह, मम्मी! पापा ने बताया नहीं था कि सफेद पट्टी पर काले अक्षर..."

"बेबी ठीक कहती है, " शर्मा ने कहा. "है तो टैक्सी ही, पर आफिस के काम से जा रही है तो ऑफिस की ही हुई न!" और उसने मुस्कराकर चित्रा की ओर देखा. चित्रा को तसल्ली हो गई.

"आप रॉयल मार्केट होते हुए जाएंगे क्या?" मम्मी ने बोरियां पकड़ाते हुए कहा.

"जी हां, कोई काम है उस तरफ?"

"हमारा रेडियो बिगड़ा पड़ा है. उनको समय ही नहीं मिल पाता. मेलोडी मेकर्स के यहां डलवा दीजिएगा."

शर्मा ने सिर हिला दिया. मम्मी ने रेडियो एक टेबिल-क्लाथ में ठीक से बांधकर ला दिया. उसे उठाते हुए शर्मा ने कहा—"और पैसे?"

"गेहूं के लिए न? मैं तो भूल ही रही थी. कितने दे दूं?"

"आप हिसाब लगा लीजिए. एक सौ दस का भाव है. दो क्विंटल के लिए दो सौ बीस."

"और मेरे एक मन . . . ."गंगाबाई ने याद दिलाई और एक तीसरी बोरी सामने रख दी.

●

उन्हें बैठने के लिए कहकर मम्मी भीतर आईं और सेफ में से पैसे निकालने लगीं. चित्रा भी उनके पीछे ही घूमती रही. उसे नए कोरे नोटों को गिनने में मजा आता था.

"मम्मी, मैं पैसे गिनूंगी."

"अरे नहीं, तू बीच में टांग मत अड़ाया कर!" मम्मी झल्लाईं.

चित्रा चुप बैठी रही. मम्मी और गंगाबाई मिलकर एक मन गेहूं का हिसाब लगाने लगीं.

"मम्मी, दो क्विंटल कितना होता है?" चित्रा से पूछे बिना न रहा गया.

"इतना भी नहीं पता! स्कूल में क्या पढ़ती है? दो क्विंटल होता है दो सौ किलो."

"बाप रे!" दोनों हाथ ठोड़ी पर रक्खे चित्रा

(शेष पृष्ठ 37 पर)

जवाब का सवाल

एक सच्ची कहानी

पिता जी ऑफ़िस जाने से पहले बी जी (मां) को मना कर गए थे कि वह भापा जी (बड़े भैया) के यहां से रुपये हरगिज न मंगवाएं. यह उनकी इज्जत का सवाल है. जैसे भी होगा, इधर-उधर से उधार लेकर वह भाबी (सुभाष) का फॉर्म भरवा देंगे, लेकिन उनसे रुपये नहीं मांगेंगे. अगर कहीं से भी पैसे नहीं मिले, तो भाबी (यानी मंझले भैया) को इस साल परीक्षा में नहीं बैठने देंगे. कोई छोटी-मोटी नौकरी करवा देंगे. अगले साल दे देगा परीक्षा. यानी कहने का मतलब यह है कि भापा जी के यहां हाथ पसारने नहीं जाना है.

लेकिन पिता जी के मना करके जाने के बावजूद बी जी ने मुझे बुलाया और भापा जी के यहां से कम-से-कम पचास रुपये मांगकर लाने का आदेश दिया. उन्होंने मुझे समझाया कि रुपये किस तरह मांगने हैं. मैंने उन्हें पिता जी की चेतावनी याद दिलाने की कोशिश की, किंतु उन्होंने मुझे यह कहकर डांट दिया कि मेरा काम हुक्म बजा लाना है, जिरह करना नहीं. आखिर मजबूर होकर भापा जी के यहां जाने के लिए तैयार होना पड़ा.

मुझे भापा जी के यहां जाना पसंद नहीं है. कारण ठीक-ठीक अभी तक मैं भी नहीं जान पाया हूं. शादी के बाद भापा जी अलग हो गए थे (अलग होने का मतलब आप समझते ही होंगे, यानी अलग मकान में रहना, अलग चूल्हे पर रोटी पकाना आदि; अपने मां-बाप से मिलना-जुलना छोड़ देना, उनकी कभी खबर न लेना भी 'अलग होने' में शामिल है या नहीं, मुझे मालूम नहीं). तब मैं इतना छोटा नहीं था कि सब बातें समझ न सकूं. मैं हर बात समझ जाता था. काफी दिन तक जब भापा जी और भरजाई जी (भाभी जी) को मैंने घर पर नहीं देखा, तो मैंने बी जी से पूछा कि वे दोनों अब घर पर क्यों नहीं रहते हैं और अब कहां रहते हैं? मेरा प्रश्न सुनकर बी जी की आंखें भर आई थीं. शायद मैंने कोई गलत बात पूछ ली थी. मैं बी जी के पास से उठकर कमरे में आ गया था.

अब मैं काफी बड़ा हो गया हूं और बातों को और अधिक स्पष्ट रूप में समझने लगा हूं. भापा जी को घर से अलग करने में भरजाई जी का हाथ था. बी जी और पिता जी के साथ रहना उन्हें पसंद न था—न जाने क्यों? मैं कसम खाकर कह सकता हूं कि बी जी ने भरजाई जी को शायद ही कभी कोई कड़वी बात कही हो. बल्कि बी जी ने उनसे हमेशा बेटी जैसा व्यवहार किया है. फिर भी न जाने क्या उन्हें इस घर में अच्छा न लगा कि वे अलग हो गए. उनके अलग होने पर बी जी खूब रोई थीं, यह मुझे अब भी याद है. सारा-सारा दिन खाना नहीं खाती थीं. बस दिन भर यही कहती रहती थीं कि बहू का सुख देखने के लिए बेटे की शादी की और बहू ऐसी आई कि हमारे बेटे को ही हमसे छीनकर ले गई . . . और न जाने क्या-क्या बी जी दिन भर कहती रहती थीं. लेकिन अंत में यह जरूर कह देती थीं, 'वे जहां रहें सुखी रहें.'

प्रदीपकुमार

www.kissekahani.com

रेखागणित को आसान व भूगोल को रंगीन बनाइये...

पिथागोरस को मात दीजिये। रेखाचित्रों को रंगीन बनाइये ... कैम्लिन इन्स्ट्रुमेंट बाक्स व रंगीन पेंसिल लीजिये। जब कि एक काम में अचूक व दिखने में आकर्षक है तो दूसरी मुलायम लेड वाली और चलने में सरल है। पर दोनों टिकाऊ, कम घिसने वाली और किफायती हैं।

कैम्लिन आपके लिए बैक्स केयान, वाटर कलर, पोस्टर कलर आदि विविध प्रकार की आर्ट सामग्रियां बनाते हैं। आपके नजदीक के विक्रेता के यहां मिलते हैं।

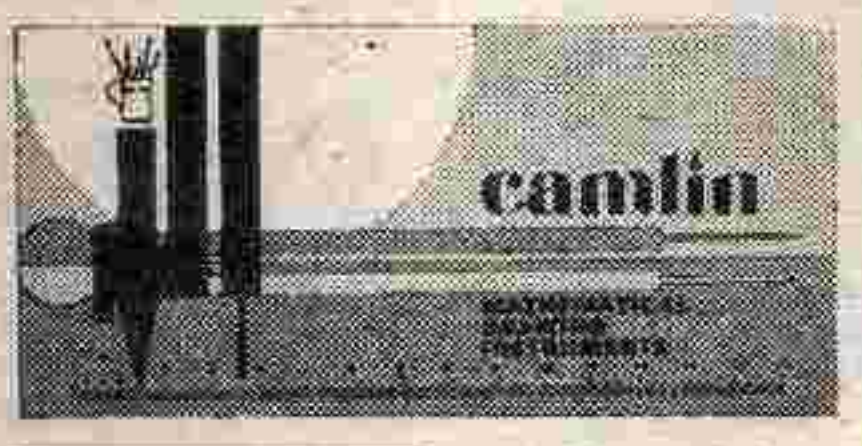

कैम्लिन

कलर पेंसिल्स व
इन्स्ट्रुमेंट बाक्स खरीदिये

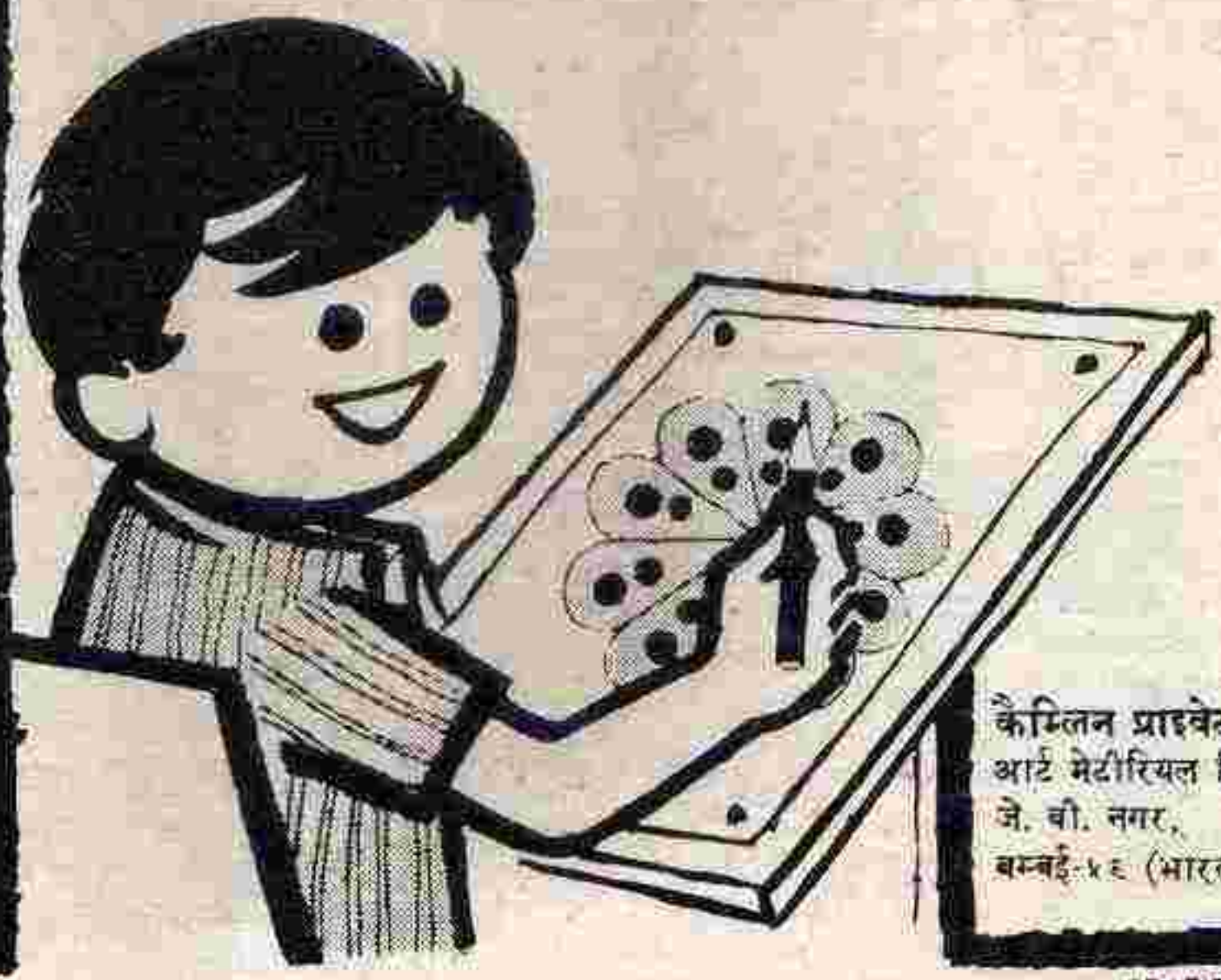

कैम्लिन प्राइवेट लिमिटेड
आर्ट मेटीरियल डिविजन,
जे. बी. नगर,
बम्बई-५९ (भारत)

PRATIBHA 2013-25 HIN

भापा जी के अलग होने पर पिता जी को बहुत गुस्सा आया था. उनका यह गुस्सा बाद में बेचैनी और अनिद्रा में बदल गया. इसी ग़म में पिता जी बीमार हो गए. बहुत खराब हालत हो गई थी. बार-बार भैया का ही नाम लेते थे. फोन करके भापा जी को बुलाया गया. भापा जी आए. उन्होंने पिता जी की तरफ बस एक बार देख भर लिया. उनका हाल-चाल तक नहीं पूछा. बस जेब में से कुछ नोट निकाले और बी जी को देने चाहे. बी जी तड़पकर पीछे हट गईं. बोलीं कि उन्हें भापा जी के पैसों की जरूरत नहीं है. भापा जी के यह पूछने पर कि उन्हें फिर किस चीज की जरूरत है, वह बोलीं कि उन्हें किसी चीज की जरूरत नहीं है. भापा जी के पास वह कुछ नहीं है जो बी जी और पिता जी को चाहिए. बी जी ने भापा जी को चले जाने के लिए कह दिया था. भापा जी चले गए थे. उसके बाद उन्होंने इधर पांव नहीं रखा. पिता जी की तबीयत जानने की भी कोशिश नहीं की.

रास्ते में आते-जाते भरजाई जी और भापा जी मुझे अक्सर मिल जाते, लेकिन वे ज्यादातर मुझसे नजर बचाकर निकल जाने की ही कोशिश करते. मुझे याद है, मैंने भरजाई जी को एक बार छुपकर भरपूर नजरों से देखा था. घर आकर मैंने बी जी को बताया कि भरजाई जी बहुत सुंदर हैं. बी जी का मन भर आया. बी जी ने मुझसे पूछा, क्या मेरा मन उनके यहां जाने को करता है? मैंने शायद कोई जवाब नहीं दिया था . . .

. . . आज न जाने क्यों बी जी ने मुझे ऐसी स्थिति में डाल दिया है, जिससे बच पाना एकदम असंभव-सा लग रहा है. मैं भैया के यहां जाना नहीं चाहता. लेकिन वहां जाने से इंकार भी तो नहीं कर सकता. भाभी का परीक्षा-फॉर्म भरा जाना है. कल 'लास्ट डेट' है. अगर फॉर्म नहीं भरा गया, तो उसका एक साल खराब हो जाएगा. शायद यही सब सोचते हुए बी जी पिता जी के मना करके जाने के बावजूद मुझे भापा जी के यहां भेज रही हैं. बी जी का कहना है कि भापा जी के आगे हाथ फैलाने में कोई हर्ज नहीं है. उनका अपना बेटा है. क्या उन्हें कुछ रुपये उधार नहीं देगा! और फिर वह अपने लिए तो मांग नहीं रही हैं, भाभी के लिए मांग रही हैं. क्या वह अपने छोटे भाई की मदद नहीं करेगा! बी जी ने भाभी से कहा था कि वह भापा जी से खुद रुपये मांग ले. लेकिन वह ऐसा स्वाभिमानी निकला कि उसने 'किसी' के आगे हाथ फैलाने से साफ मना कर दिया. मजबूर होकर मुझे भापा जी के घर जाना पड़ा. बस में बैठकर मैं शक्तिनगर उनके घर पहुंच गया.

मकान के बाहर भरजाई जी का छोटा भाई अपने दोस्तों के साथ खेल रहा था. मुझे देखते ही उसने मुंह बिचकाया और फिर खेल में जुट गया. मैं सोचने लगा, बच्चों तक के मन में इन्होंने हमारे प्रति घृणा के बीज बोए हुए हैं.

मेरे पांव एक-एक मन के हो रहे थे. अंदर जाने को मन नहीं कर रहा था. लेकिन अंदर जाना जरूरी था, मजबूरी थी. मैं अंदर पहुंच गया. भरजाई जी ड्राइंग-रूम में बैठी हुई थीं. वह एक फ़िल्मी पत्रिका इस प्रकार पढ़ रही थीं कि पत्रिका के पीछे उनका चेहरा छिप गया था. मैंने उन्हें नमस्ते की. उन्होंने चेहरे से पत्रिका हटाकर मुझे देख भर लिया और फिर उसी तरह पढ़ने लगीं. मेरे अभिवादन का जवाब उन्होंने नहीं दिया. उनके कहे बिना ही मैं सोफे पर जाकर बैठ गया. वहां से भाग जाने की इच्छा हो रही थी. पर फिर वही भाभी की पढ़ाई का खयाल . . . पैरों में बेड़ियां-सी पड़ गईं. मेरा कंठ सूख रहा था. लेकिन वहां कोई नहीं था जो मुझे पानी के लिए पूछे . . .

●

मैं अपने आपको पैसे मांगने के लिए तैयार करने लगा. जब मैंने महसूस किया कि मैं बिना किसी हिचकिचाहट के भरजाई जी से रुपये मांग सकता हूं तो मैंने कहा—"भरजाई जी . . ."

"हूं . . ." उन्होंने पत्रिका के पीछे से ही कहा.

आवाज फिर मेरे गले में अटक गई. इतनी देर में पैसे मांगने के लिए मैंने जो हिम्मत जुटाई थी, वह सहसा जवाब दे गई. गला जैसे जकड़ गया था. मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि बात कैसे शुरू करूं. भरजाई जी शायद मेरी इस हिचकिचाहट को भांप गई थीं.

"क्या पूछ रहे थे . . .?" उन्होंने चेहरे से पत्रिका हटाते हुए पूछा.

"मैं आपसे कुछ . . . मैं पूछ रहा था भापा जी कहां गए हैं?"

"ऑफिस गए हैं . . ." कहकर वह फिर पत्रिका पढ़ने लगीं.

"आज तो सैकिंड सैटरडे है न? छुट्टी होगी उनकी?" मुझे बात बढ़ाने का मौका मिल गया.

मेरे इस प्रश्न पर भरजाई जी खिसिया-सी गईं. बोलीं, "ओवरटाइम नहीं हो सकता क्या?"

"ओ: हो . . ." कहकर मुझे चुप हो जाना पड़ा.

फिर वही काटने वाली चुप्पी कमरे में छा गई.

मेरी समझ में नहीं आया कि दोबारा बात को किस तरह शुरू करूं. बात करने की सारी शक्ति जवाब दे चुकी थी. लाख कोशिशों के बावजूद मेरे मुंह से एक भी शब्द न निकला.

मैं सोच रहा था, अच्छा यही हो कि भरजाई जी खुद मुझे चले जाने को कह दें. कम-से-कम मैं बी जी को जाकर यह तो कह सकूंगा कि मैं वहां जाकर बैठा और मेरे बात करने से पहले ही भरजाई जी ने मुझे चले जाने को कह दिया. और इसमें ज्यादा झूठ भी नहीं होगा. लेकिन भरजाई जी ने न कुछ कहा है और न कहेंगी ही. और मैं न जाने कब तक इसी दुविधापूर्ण स्थिति में पड़ा रहूंगा.

मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि अगर भाभी की पढ़ाई का खयाल न होता तो मैं अब तक कभी का उठकर भाग गया होता. लेकिन मुझे यहां से पैसे लिये बिना उठना नहीं है एक जिद्दी भिखारी की तरह. भिखारी का खयाल आते ही मेरा मन कड़वाहट से भर गया. क्या मैं यहां एक भिखारी की हैसियत से आया हूं? मुझे लगा, मैं एक उस भिखारी की स्थिति में पड़ गया था जिसके लगातार बोलने के बावजूद उसे भिक्षा नहीं मिली हो. हालांकि मैं काफी देर से चुप था, लेकिन फिर भी मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मैं काफी देर से बोल रहा हूं, गिड़गिड़ा रहा हूं, भीख मांग रहा हूं, लेकिन मुझे अब तक भीख नहीं मिली थी.

लेकिन मैं नहीं चाहता था कि मैं वहां भिखारियों की-सी स्थिति लेकर बैठा दीवारों का मुंह ताकता रहूं. अचानक मेरी मुट्ठियां भिच गईं. लगा, जैसे मैं कुछ कर बैठूंगा. मुझे अनुभव हुआ जैसे मैं जोर-जोर से चिल्ला रहा हूं—'तुम लोग हमें क्या समझते हो? क्या हम भिखारी हैं? इतने गए-गुजरे हैं कि भाभी का फॉर्म भी नहीं भरवा सकते? हम जैसे भी होगा गुजारा करेंगे, लेकिन तुमसे नहीं मांगेंगे. दो पैसे पास में क्या हो गए, जमीन पर पांव ही नहीं टिकते! अपने मां-बाप तक को छोड़ दिया, जिन्होंने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया और इस काबिल बनाया कि तुम सुखी हो सको. क्या इसलिए कि तुम अपने घर की तरफ मुंह उठाकर भी न देखो? घरवालों की मदद करना तो दूर उनसे सीधे मुंह बात भी न करो . . .'

मेरा गला दर्द करने लगा, हालांकि मैं काफी देर से चुपचाप बैठा हुआ था. मुझे लगा, अपना अहं और स्वाभिमान बनाए रखने के लिए यह जरूरी है, मैं यहां से बिना पैसे मांगे चल दूं. वरना अगर स्वाभिमान एक बार नष्ट हो गया, तो उसे दोबारा प्राप्त करना कठिन होगा. वास्तव में पिता जी ठीक ही मना कर गए थे. मुझे पहली बार महसूस हुआ कि अपना स्वाभिमान पैसे से बहुत बड़ा है और इसे किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहिए. इस विचार ने मुझको एक अपूर्व शक्ति दी और भाभी की पढ़ाई की चिंता को धुंधला कर दिया. मैं उठ खड़ा हुआ.

"अच्छा, भरजाई जी, अब मैं चलता हूं . . ." मेरी आवाज में आश्चर्यजनक दृढ़ता थी.

उस घुटनभरे घर से निकलकर मैंने सुख की सांस ली. घर की बस पकड़ी. बस में खिड़की से सिर टिकाए बैठा मैं सोच रहा था कि बी जी को क्या जवाब दूंगा. लेकिन उन्हें देने के लिए क्या मेरे पास कोई भी जवाब नहीं था?

शायद था—शायद नहीं! ●

260 आदर्शनगर, जयपुर–4 (राजस्थान).

www.kissekahani.com

एक मर्म कथा

स्वती

मुझे होस्टल में कमरा एलॉट करते समय वार्डन ने कहा—"तुम हो नीना और तुम्हारी रूम-मेट का नाम है बीना. नीना, बीना जैसे दो बहनों के नाम हों. सब लड़कियां चाहती हैं कि उनके पास अपना अलग-अलग कमरा हो, लेकिन बीना मुझसे रूम-मेट मांगती रहती है. बड़ी अच्छी लड़की है; पढ़ने में भी तेज, खेलने में भी तेज. तुम दोनों की खूब निभेगी."

कमरे की डुप्लीकेट चाबी मुझे मिल गई. मैंने अपना सामान कमरे में रखवाया. बिना पार्टीशन के ही कमरे के दो भाग बने हुए थे. प्रत्येक भाग में एक कपबोर्ड, एक मेज, एक कुर्सी और एक पलंग था. दरवाजा, खिड़की, रोशनदान और छत का पंखा कॉमन था. मैं अपना भाग सजाने में जुट गई. डैडी सामान लगवाने में मेरी सहायता करते रहे. एक घंटा पश्चात् वह चले गए—यह कहकर कि किसी चीज की जरूरत हो तो फोन कर देना. अगले सप्ताह डैडी का ट्रांसफर ऐसी जगह हो रहा था जहां मेरी पढ़ाई का उचित प्रबंध नहीं हो सकता था. इसलिए मेरा होस्टल में रहना जरूरी हो गया. पहले स्कूल में होस्टल नहीं था. इसलिए स्कूल बदलना पड़ा. नया स्कूल, फिर होस्टल लाइफ; मुझमें खूब उत्साह था. अब बात-बात पर टोकने के लिए मम्मी-डैडी तो सिर पर सवार न होंगे.

सामान सेट करते मैं थक चली थी. अभी मैंने बिस्तर भी नहीं खोला था. इसलिए मैं अपनी रूम-मेट के बिछे-बिछाए बिस्तर पर लेट गई. आहा, क्या गुदगुदा मुलायम बिस्तर था! लेटकर आनंद आ गया. बरबस बिस्तर में लोटपोट हो जाने को मन करता था. मैंने चादर उठाकर देखा, नीचे डन-लपसिलो का गद्दा था. तभी तो ऐसे बिस्तर पर कोई लेटे और नींद न आए, हो ही नहीं सकता. तिस पर मैं तो थकी हुई थी. जाने कब मेरी आंख लग गई. घंटा भर सोकर जागी तो छह बज चले थे. मैं हड़बड़ाकर उठी. पहले रूम-मेट का बिस्तर ठीक किया, फिर अपना बिस्तर बिछाने लगी. उसी समय मेरी रूम-मेट कमरे में आ धमकी—टी-शर्ट और स्कर्ट पहने, हाथ में बेडमिंटन का रैकेट थामे, कपड़े पसीने में सराबोर.

मैंने अपना परिचय दिया—"मैं हूं तुम्हारी रूम-मेट नीना बंसल.

नोट

✱ सुषमा मल्होत्रा

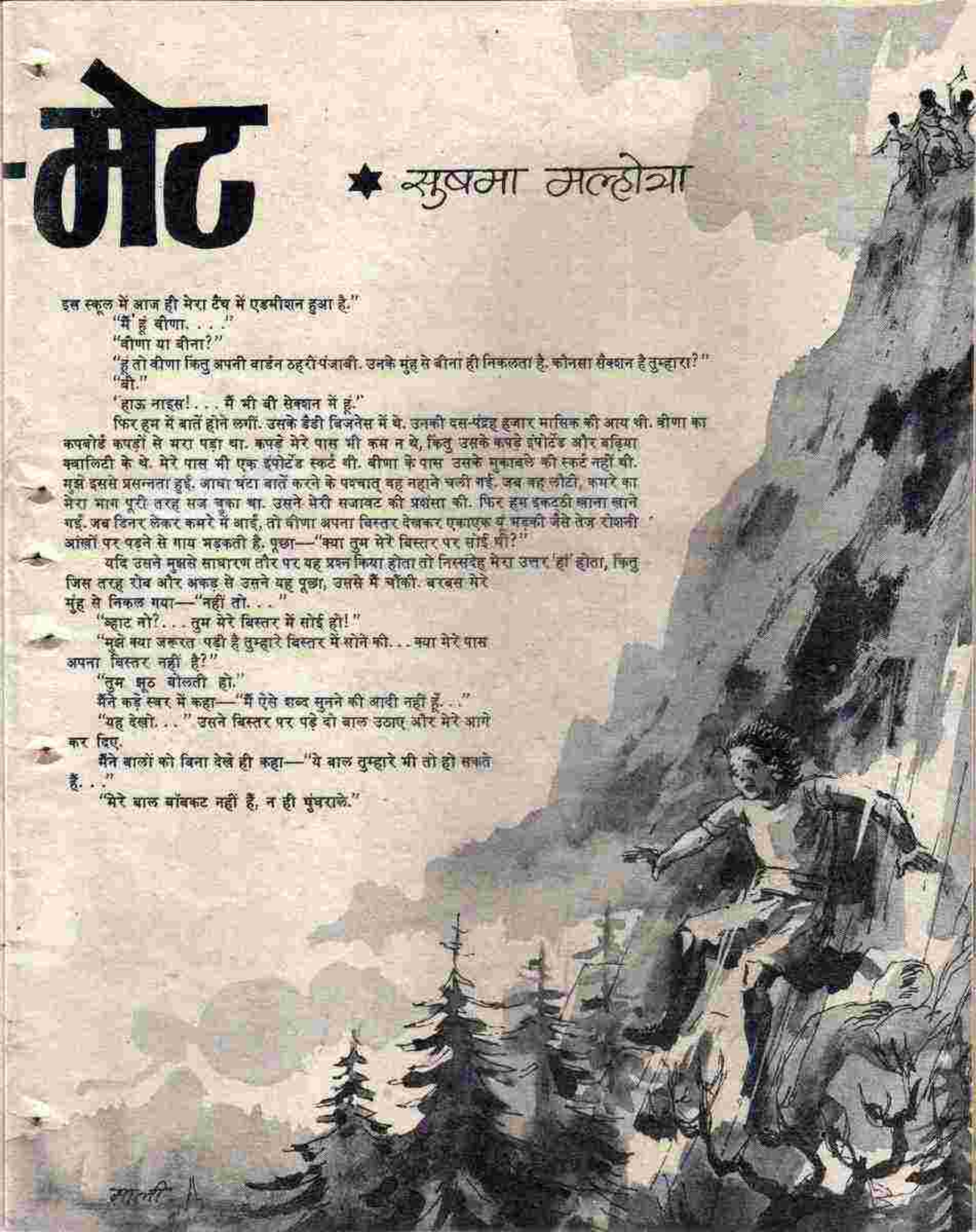

इस स्कूल में आज ही मेरा टैंथ में एडमीशन हुआ है."

"मैं हूं वीणा. . . ."

"वीणा या बीना?"

"हूं तो वीणा किंतु अपनी वार्डन ठहरी पंजाबी. उनके मुंह से बीना ही निकलता है. कौनसा सैक्शन है तुम्हारा?"

"बी."

"हाऊ नाइस! . . . मैं भी बी सेक्शन में हूं."

फिर हम में बातें होने लगीं. उसके डैडी बिजनेस में थे. उनकी दस-पंद्रह हजार मासिक की आय थी. वीणा का कपबोर्ड कपड़ों से भरा पड़ा था. कपड़े मेरे पास भी कम न थे, किंतु उसके कपड़े इंपोर्टेड और बढ़िया क्वालिटी के थे. मेरे पास भी एक इंपोर्टेड स्कर्ट थी. वीणा के पास उसके मुकाबले की स्कर्ट नहीं थी. मुझे इससे प्रसन्नता हुई. आधा घंटा बातें करने के पश्चात् वह नहाने चली गई. जब वह लौटी, कमरे का मेरा भाग पूरी तरह सज चुका था. उसने मेरी सजावट की प्रशंसा की. फिर हम इकट्ठी खाना खाने गईं. जब डिनर लेकर कमरे में आईं, तो वीणा अपना बिस्तर देखकर एकाएक यूं भड़की जैसे तेज रोशनी आंखों पर पड़ने से गाय भड़कती है. पूछा—"क्या तुम मेरे बिस्तर पर सोई थी?"

यदि उसने मुझसे साधारण तौर पर यह प्रश्न किया होता तो निस्संदेह मेरा उत्तर 'हां' होता, किंतु जिस तरह रोब और अकड़ से उसने यह पूछा, उससे मैं चौंकी. बरबस मेरे मुंह से निकल गया—"नहीं तो. . . "

"व्हाट नो?. . . तुम मेरे बिस्तर में सोई हो!"

"मुझे क्या जरूरत पड़ी है तुम्हारे बिस्तर में सोने की. . . क्या मेरे पास अपना बिस्तर नहीं है?"

"तुम झूठ बोलती हो."

मैंने कड़े स्वर में कहा—"मैं ऐसे शब्द सुनने की आदी नहीं हूं. . ."

"यह देखो. . . " उसने बिस्तर पर पड़े दो बाल उठाए और मेरे आगे कर दिए.

मैंने बालों को बिना देखे ही कहा—"ये बाल तुम्हारे भी तो हो सकते हैं. . ."

"मेरे बाल बॉबकट नहीं हैं, न ही घुंघराले."

"आलराइट, ये मेरे ही बाल हैं. तो क्या मेरे बाल उड़कर तुम्हारे बिस्तर पर नहीं पहुंच सकते? बाल बाल हैं, रस्सा नहीं कि उड़ नहीं सकता!" मैंने तर्क किया, हालांकि इस तर्क में ऐसा कोई दम न था.

वीणा ने झल्लाकर कहा—"यू डोंट टाक टू मी. . ."

"हू वांट्स टू टाक टू यू?"

पहले ही दिन खटपट हो गई. सिर मुंडाते ही ओले पड़े. रात को वह अपनी साइड में हिसाब के सवाल निकालती रही. मैं अपने हिस्से में नॉवल पढ़ती रही. मैं चाहती थी कि वह मुझसे पूछे कि मैं कितने बजे तक पढ़ूंगी. मुझे बत्ती जली होने पर नींद नहीं आती. मेरा ख्याल था, वीणा को भी प्रकाश में नींद नहीं आएगी. ग्यारह बजे उसने किताब बंद की और बिना प्रकाश की चिंता किए सोने चली गई. थोड़ी देर में वह सचमुच सो गई. कुछ देर बाद मैंने बत्ती बुझाई और सो रही.

सुबह जागने पर मैं बिस्तर पर पड़ी करवटें बदल रही थी कि वीणा उठी और मुझे जागी देखकर बोली—"गुड मॉर्निंग, रूम-मेट. . ."

यह संधि-पत्र था जिसे मैंने तुरंत स्वीकार कर लिया—"गुड मॉर्निंग!"

●

रविवार के दिन सुबह वीणा होस्टल से छुट्टी लेकर अपने लोकल गार्जियन से मिलने चली गई. मेरे डैडी अभी दो-तीन दिन के लिए यहां थे और दस बजे कार लेकर मुझे लेने आने वाले थे.

मैं तैयार होकर उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी. समय काटने के लिए मैंने नॉवल उठा लिया. मुझे लेटकर पढ़ने की आदत है. जाने मेरे दिल में क्या आया कि मैं अपना अच्छा-भला बिस्तर छोड़कर वीणा के बिस्तर पर लेटकर पढ़ने लगी. डैडी आए. मैंने घर जाने से पहले अच्छी तरह देख लिया कि वीणा के बिस्तर पर मेरे सिर से किसी किस्म का छोटा-बड़ा घुंघराला या सीधा बाल न छूट गया हो. बिस्तर पर बाल तो नहीं, दो-तीन सलवटें अवश्य छूट गई थीं. मैंने बेड-कवर खींचकर सलवटें निकाल दीं.

रात को मैं लौटी, तो वीणा पहले ही कमरे में मौजूद थी. उसका चेहरा तना हुआ था. मेरे कमरे में घुसते ही उसने पूछा—"आज फिर तुम मेरे बिस्तर पर सोई थीं?"

"तुम्हारा दिमाग चल गया मालूम होता है! कभी तुमने मुझे दिन में सोते देखा है?"

"अभी परसों ही तुम सारी दोपहर सोती रही थीं."

"इसलिए कि उससे पहले मैं रात के एक बजे तक पढ़ती रही थी."

"हो सकता है कल भी तुम देर तक पढ़ती रही हो. . . मैं कल तुमसे पहले सोई थी."

"मैं आज सुबह ही अपने घर चली गई थी."

"किंतु तुम घर जाने से पहले मेरे बिस्तर पर सोई थीं."

"अजीब लड़की हो. . . मैं तुम्हारे बिस्तर की तरफ झांकती भी नहीं हूं. मेरे पास अपना बिस्तर है जो तुम्हारे बिस्तर से अधिक मुलायम है." मैंने क्रोध में बिफरकर कहा, हालांकि यह सरासर गलत था. उसके बिस्तर पर डनलप-पिलो बिछा था, मेरे पर रुई का गद्दा. बेचारी रुई का डनलप-पिलो से क्या मुकाबला!

"तुम मेरे बिस्तर की तरफ झांकती नहीं हो, किंतु उसपर सोती जरूर हो. मेरा तकिया सूंघो, सुबह मैंने इसका कवर बदला है. अब इसमें से कैथरायडिन आयल की सुगंध आती है. मैं बालों में कैथरायडिन नहीं, पामओलिव आयल लगाती हूं. कैथरायडिन तुम लगाती हो."

बड़ा सबल तर्क था. मुझे उसपर क्रोध आया. वाह री, शरलक होम्स की बहन! शरलक होम्स के नॉवल मैं पढ़ती हूं और शरलक होम्स की बुद्धि इसकी खोपड़ी में समाई जाती है. है न अजीब बात! मैं चुप रही. वीणा ने वार्निंग दी—"अब यदि तुम मेरे बिस्तर पर सोईं, तो मैं तुम्हारा सारा सामान उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दूंगी. तुम मेरी किसी भी चीज का इस्तेमाल कर सकती हो, मेरा कोई भी कपड़ा पहन सकती हो, किंतु मैं अपने बिस्तर पर किसी का सोना बरदाश्त नहीं कर सकती."

"तुम क्या समझती हो कि मेरे पास ड्रैसों की कमी है. . ." मैंने तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया. झगड़ा यहीं खत्म हो गया.

उस दिन से हमारी दुश्मनी पक्की हो गई. उसकी हर बात का विरोध करना मेरी हॉबी बन गया. उसे सोमवार का डिनर पसंद था, तो मैंने सोमवार का डिनर नापसंद करना शुरू कर दिया. स्कूल की ड्रैस बदली. वीणा ने पुरानी ड्रैस की वकालत की, तो मैंने नई ड्रैस का गुण-गान किया. हमारी आपस में सिर्फ इतनी ही बातें होती थीं जितनी दो रूम-मेट के बीच होनी बहुत जरूरी है. हमारे बीच में एक खाई-सी बनती गई और दिन-प्रतिदिन इस खाई की लंबाई-चौड़ाई-गहराई बढ़ती गई. तब तक होस्टल में मेरी कई दूसरी सहेलियां बन गईं और मुझे वीणा की फ्रेंडशिप की ऐसी जरूरत भी न रही.

कुछ दिनों बाद होस्टल में एक नई लड़की आई—रश्मि. उसे पता नहीं था कि होस्टल के कमरे में टेबिल-टैनिस और बैडमिंटन के रैकेट को छोड़कर और किसी भी इनडोर गेम का सामान रखना मना है. वह अपने साथ कैरमबोर्ड उठा लाई थी. रात के डिनर के पश्चात् हम जो कैरम खेलने बैठीं तो समय का पता ही न चला. जब मैं यह सोचकर उठी कि ग्यारह बजे होंगे, तो उस समय स्वयं मेरी ही कलाई-घड़ी में एक बज रहा था. वीणा तब तक अंदर से चिटखनी चढ़ा-कर सो चुकी थी.

मैंने दरवाजे को धीमे से थपथपाया. वीणा न जगी. मैंने और जोर से खटखटाया. व्यर्थ! मैंने थपथपाहट का वोल्यूम और ऊंचा किया. असफल! परेशान होकर मैंने दरवाजे पर दो लातें जमा दीं, इसपर साथ के कमरे से सुषमा बोल उठी—"आधी रात को कौन ईडियट शोर कर रहा है."

मुझे लगा कि वीणा जाग चुकी है किंतु मुझे तंग करने के लिए दरवाजा नहीं खोल रही है. आखिर लड़की है, कोई कुंभकरण नहीं; उसे जाग जाना चाहिए था. फिर मैंने जो दरवाजे की धुनाई की, तो फ्लोर की कई लड़कियां बाहर निकल आईं और मुझपर बिगड़ने लगीं. आखिर वीणा ने आंखें मलते हुए दरवाजा खोला. मुझे देखकर बोली—"सॉरी. . . मैं समझी थी कि तुम नाइट-लीव लेकर लोकल गार्जियन के पास चली गई हो. . . नहीं तो मैं चिटखनी लॉक न करती. . ."

मैंने कोई उत्तर न दिया. दरअसल मैं तय कर चुकी थी कि मुझे अब वीणा के साथ नहीं रहना है. बहुत हो चुका; रोज-रोज की दांताकिलकिल अब और नहीं!

सुबह मैं वार्डन के पास गई. एक बजे तक रश्मि के कमरे में खुद के कैरम खेलने की बात छुपाकर मैंने रात की घटना सुना दी कि ग्यारह बजे वीणा ने मुझे परेशान करने के लिए दरवाजा नहीं खोला. वीणा के विरुद्ध नमक-मिर्च लगाकर एक-दो घटनाएं और बताने के पश्चात् मैंने वार्डन से अपना रूम या रूम-मेट बदलने को कहा. वार्डन ने वीणा को बुलाया. वीणा भी अपना रूम बदलना चाहती थी. वार्डन ने पूरा किस्सा सुनकर अपना निर्णय दिया—"तुम दोनों एक सप्ताह हिल-मिल कर रहने का प्रयत्न करो. उसके बाद पंद्रह दिन की छुट्टी हो जाएगी. छुट्टियों के बाद भी यदि तुम्हारा यही निश्चय रहा, तो मैं तुम दोनों में से एक का रूम बदल दूंगी."

"मैडम. . ." मैंने कहना चाहा कि मैं सात दिन तो क्या, वीणा के साथ सात घंटे भी नहीं रह सकती.

वार्डन ने बीच में ही टोक दिया—"अच्छा. . . अच्छा. . . अब तुम जाओ. तलाक मिलना उतना आसान नहीं जितना तुम सोचती हो!"

बाहर आकर वीणा ने कहा—"पुअर जोक!"

"व्हाट?"

"मैडम में 'सेंस ऑफ ह्यूमर' नहीं है. कैसा भद्दा मजाक किया?"

मैं फंस गई. यदि मैं कहती हूं कि वार्डन ने भद्दा मजाक नहीं, एक शानदार बात कही, तो इसका अर्थ है कि मैं वार्डन की बात से सहमत हूं और वीणा के साथ दोस्ती चाहती हूं; यदि कहूं 'हां' तो मैं वीणा के साथ सहमत होती हूं. इस दुश्मनी की हालत में वीणा के साथ सहमत होना मेरे स्वास्थ्य के लिए उचित न था. मैं चुप हो रही. एक चुप, सौ सुख.

दशहरे की छुट्टियों में वार्डन ने नैनीताल जाने का प्रोग्राम बनाया. 'टूर' के लिए पहले तीन सौ रुपया जमा करना था. न तो वीणा ने मुझे बताया कि वह टूर पर जा रही है न मैंने उसे. जब नैनीताल जाने वाली चौदह लड़कियों की फाइनल लिस्ट नोटिस बोर्ड पर लगी, तो सबसे ऊपर वीणा का नाम देखकर मैं वार्डन के पास गई और उनसे कहा—"मैडम, मैं टूर पर नहीं जाना चाहती. मेरा रुपया रिफंड कर दीजिए."

मैडम मुझपर बरस पड़ीं—"इसलिए नहीं जाना चाहतीं कि वीणा भी टूर पर जा रही है? तुम टैब में पढ़ती हो, बच्ची नहीं हो. वास्तव में तुम दोनों एक ही जितनी मूर्ख हो. उधर तुम्हारे कारण वह अपना नाम कैंसिल कराने चली आई, इधर उसके कारण तुम. अब सीटों की रिजर्वेशन हो चुकी है. तुम टूर पर जाओ न जाओ, तुम्हारी मर्जी है. पैसा रिफंड नहीं होगा."

पैसा वापस नहीं मिलेगा, तो मुझे क्या पागल कुत्ते ने काटा है जो नैनीताल न जाती! हम नैनीताल पहुंचीं. ग्रुप में हम दो ही लड़कियां ऐसी थीं जो आपस में बोलती नहीं थीं. कई बार वार्डन ने हमारी बोलचाल कराने की कोशिश की किंतु बेकार. हमारी गाड़ी कीचड़ में गहरी धंस चुकी थी, सो अड़ी रही.

●

टूर का चौथा दिन था. हम भीमताल में बोटिंग कर रही थीं. बोटिंग के पश्चात् घूमने का प्रोग्राम बना तो वार्डन ने कहा—"मैं थक चुकी हूं, इसलिए मैं यहीं झील के किनारे बैठूंगी, तुम लोग घूमो. हां, एक-डेढ़ घंटे में अवश्य आ जाना. देखना, कोई लड़की ग्रुप से अलग न हो."

झील के साथ जो पहाड़ी थी, हम उसपर चढ़ने लगीं. पहाड़ी पर चढ़ने का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ था और उसपर चढ़ने की कोई तुक न थी. किंतु मनुष्य में जो 'एडवेंचर' करने की भावना होती है उसी के कारण हम चट्टानों पर कूदती-फांदती ऊपर चढ़ती गईं. सहसा आगे की लड़कियां ठिठककर खड़ी हो गईं. हम एक ऐसी जगह पहुंच चुकी थीं, जहां से नीचे की ओर लगभग दस मीटर लंबी और चार मीटर चौड़ी एक समतल चट्टान तिरछी टिकी हुई थी. हम जिस तरफ चढ़कर चोटी पर पहुंची थीं, चट्टान उसके दूसरी ओर थी. यदि हममें से किसी लड़की ने एक कदम आगे रख दिया होता, तो वह उस भयानक ढलान पर फिसलती हुई दस मीटर नीचे पहुंच जाती. चट्टान का निचला सिरा सघन झाड़ियों में गुम हो गया था. वह इतनी ही सपाट और फिसलनी थी जैसे हमारे होस्टल का पालिश किया हुआ फर्श.

हम सब हैरत से प्रकृति के इस करिश्मे को देख रही थीं. सहसा चट्टान पर से मेरा पैर फिसला. अगले ही पल भयानक वेग से चट्टान पर रपटती

मुखपृष्ठ का चित्र

सोलह वर्षीया अमीना मुकरी जीवन को एक खूबसूरत सफर मानती है और शायद इसी लिए यात्रा करने की शौकीन भी है. साथ ही पढ़ना और सिनेमा देखना उनकी रुचियों में शामिल है. उनकी महत्त्वाकांक्षा है कि उच्च शिक्षा विदेश में प्राप्त करें.

खेल-कूद में 'बैडमिंटन' उनका प्रिय खेल है. हाल ही में उन्होंने एस. एस. सी. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है और 'जयहिंद कालेज' बंबई, में फर्स्ट इयर (आर्ट्स) में दाखिला लिया है. हमारी शुभ कामना है कि विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उनकी महत्त्वाकांक्षा अवश्य पूरी हो!

हुई मैं नीचे जा रही थी. मेरी कुहनियों, पीठ और पैरों पर जगह-जगह से खाल छिल गई. सारे कपड़े फट गए. कुछ क्षण की हवाई यात्रा के पश्चात् मेरे पैर झाड़ियों में छिपी किसी चट्टान से टकराए. एक दर्दभरी चीख मेरे मुंह से निकली और मैं अर्द्ध बेहोशी में वहीं पड़ी रही.

मेरी चीख पहाड़ियों में गूंज ही रही थी कि धड़ाम से एक दूसरी लड़की चट्टान पर से फिसलती चली आई. वह वीणा थी. इतनी तिरछी चट्टान पर से नीचे आने में उसकी भी लगभग वही दशा हो गई थी जो मेरी हुई थी. क्योंकि वह जान-बूझ कर फिसली थी, इसलिए उसे चोट कम लगी थी. अलबत्ता उसकी इम्पोर्टेड ड्रैस के परखचे उड़ गए थे.

वीणा ने मुझे संभाला. मेरे पैरों में मोच आ जाने के कारण भयानक पीड़ा हो रही थी. मैं हिल-डुल नहीं सकती थी. बड़ी विकट स्थिति थी. करें तो क्या करें? उस तिरछी चट्टान पर से हो कर ऊपर जाना तो एकदम असंभव था. इससे नेपोलियन बोनापार्ट भी इंकार नहीं कर सकता था. शेष तीन तरफ इतनी घनी और कंटीली झाड़ियां उगी हुई थीं कि उनपर चला ही नहीं जा सकता था. उनपर से होकर ऊपर पहुंचना तो चांद-तारे तोड़ लाना था. उधर झाड़ियों में सांप निकलने का डर! चट्टान के ऊपरी सिरे पर लड़कियां मूर्खों की तरह पलकें झपकाती नीचे देख रही थीं कि हम जीवित हैं या स्वर्ग सिधार गईं. आखिर ऊपर से उन्होंने चिल्लाकर कहा—"घबराना मत. हम अभी मैडम को बुलाने जा रही हैं."

मेरा पीड़ा के मारे बुरा हाल था. सिर में चक्कर आ रहे थे और दिल ऊपर को उछल रहा था. मुझे पानी चाहिए था, किंतु पानी वहां कहां? वीणा ने मुझे चट्टान पर ठीक से लिटा दिया. उसके अपने बदन में जगह जगह से खून रिस रहा था, किंतु मुझे वह बराबर तसल्ली दिए जा रही थी—"चिंता मत करो. अभी वार्डन आ जाती हैं. वह कुछ इंतजाम करेंगी. क्या तुम्हें बहुत चोट लगी? मुझे तो फिसलने में खूब मजा आया! यदि इस चट्टान की लंबाई तीन चौथाई कम होती तो यह संसार का सबसे बढ़िया फिसलना झूला होती!"

लगभग एक घंटा पश्चात् वहां वार्डन पहुंचीं, उस एक घंटे में वीणा ने तरह-तरह से मेरा मन बहलाने की कोशिश की. वार्डन के साथ नैनीताल के किसी माउंटेनिअरिंग क्लब के चार सदस्य थे. उनमें से एक सदस्य रस्से के सहारे तिरछी चट्टान पर नीचे उतर आया. दो रस्सों में बंधा एक स्ट्रेचर नीचे लटकाया गया. नीचे वाले सदस्य ने मुझे उसपर लिटाया. ऊपर से स्ट्रेचर खींचा जाने लगा और तीसरे रस्से के सहारे उस सदस्य को भी. सदस्य ने सहारा देकर मेरे बदन को चट्टान के साथ टकराने से रोका. इसी तरह वीणा को भी ऊपर लाया गया.

क्लब के एक सदस्य ने मेरे छिले हुए हिस्सों पर मरहम लगाया और मेरे पैरों की मालिश कर मोच भी निकाल दी.

●

डॉक्टर खान को पूरी कहानी सुना चुकी थी. उन्होंने वीणा के घुटने पर मरहम लगाते हुए पूछा—"नीना तो फिसल ही गई थी; मुझे यह बताओ कि तुम्हें जान-बूझकर यह खतरा मोल लेने की क्या जरूरत पड़ी थी?"

वीणा कुछ क्षण खामोश रही. फिर बताने लगी—"मैडम, जब नीना नीचे गिर पड़ी, तो मुझे पूरा विश्वास हो गया कि इतनी ऊंचाई से फिसलने के बाद वह किसी हालत में बच ही नहीं सकती. उसके बाद मुझे कुछ नहीं मालूम, मुझे क्या हुआ. शायद मेरे दिमाग ने काम करना बंद कर दिया. मैंने ऊपर से नीना को नीचे पड़ा देखा और फिसल पड़ी. फिसलते समय इतनी ही सावधानी बरती कि पैर एक हरी-भरी झाड़ी की सीध में रखे ताकि किसी चट्टान से टकराकर टांगें न टूट जाएं. यही खयाल दिल में था कि यदि नीना के बचने का कोई चांस हो, तो उसे बचा लूं. वह मेरी रूम-मेट है न, मैडम. उसे घायल पड़ा देखकर दिल को कुछ-कुछ होने लगा था!"

अपनी बात खत्म करते न करते वीणा रो रही थी, मैं भी. वार्डन और दूसरी लड़कियां हमें आश्चर्य और खुशी से देख रही थीं. ●

सी.बी. 7 गुरुद्वारा रोड, हरिनगर, नई दिल्ली-18

www.kissekahani.com

पुराणमल नवकुमार

शेहाब

किंतु, किंतु... अरे, मैं मरा!
ख़ामोश!
ही, ही, ही!
मैं पहले इंजेक्शन मारता हूं, पीछे बात करता हूं – डाक्टरी मैंने पढ़ी नहीं तो क्या हुआ! बड़े-बड़े डाक्टर मेरी सम्मति का लोहा मानते हैं!
आह!

किंतु आपने यह तो पूछा होता कि मेरा रोग क्या है!

मुझे देख कर रोग खुद बखुद पैदा होते हैं और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं!

जानते हैं तुम मॉडर्न लोगों पर, मैं तो...

...इलाज कराऊंगा झाड़-फूंक करने वाले पुराने वैद्जी से!

दूसरे दिन...

अरे पुराणमल, तुम खंभे से क्यों बंधे हो?
कौन?

इसे मैंने बांधा है! मैं इसका इलाज कर रहा हूं, और मार-मार कर रोग और भूत भगा कर रहूंगा!

किंतु यह जुल्म है!

ख़ामोश! मैं अपने रोगियों से इतना प्रेम करता हूं कि मरने के बाद उनकी समाधियों पर नियम से फूल चढ़ाता हूं!

देखा!

बचाओ! बचाओ!

www.kissekahani.com

नगर नगर में घूमता आईना—

भारतीय किशोर

आकलनकर्ता :

डॉ० देवेश ठाकुर

नारायण शंकर गवरे

शिवाजी पवार

रामचंद्र मुलिक

आज सुबह से आसमान खुला हुआ है.

लगातार बारिश के तीन दिन और तीन रातें! धारावी की इन झोपड़-पट्टियों में जाड़े और गर्मी में भी कीचड़ मौजूद रहती है. इन दिनों तो यह सबका सब दलदल बन जाता है.

मैं इस बस्ती में से होता हुआ शीव की ओर लौट रहा हूं. पुलिस चौकी के पास एक खुली जगह में आठ-दस लड़के बतिया रहे हैं. उनके पास से गुजरता हुआ मैं सुनता हूं—'साली 'आमेद' भी कोई पिक्चर है? घर में जाओ तो लफड़ा, टिकट की लाइन लगाओ तो लफड़ा और हॉल में बैठो तो साली छोकरियों की हिचकियों का म्यूजिक सुनो. अपन साले तो राजेश की वजह से गए थे. दो रुपये घुस गए. तीस पैसे का समोसा खाया सो अलग. इस से तो 'अलैक्जेंड्रा' में इंग्लिस पिक्चर देखना मांगता.'

मैंने देखा, कहने वाला 'शम्मी कट' था. उकड़ू बैठा हुआ. उसे देखकर मुझे अपने काम की बात याद आ गई. तभी उन में से मुझे किसी ने आवाज दी—'सर, आप?'

और मैंने देखा, सामने हाथ जोड़े नारायण खड़ा था. उसे देखकर मेरे मुंह से निकल गया—'अरे नारायण, तू यहां! कल हॉस्टल में आएगा क्या? मुझ से मिल लेना, काम है.'

दूसरे दिन नारायण मेरे पास आता है. उसके चेहरे पर वही मायूसी है जो मैं पिछले दो-तीन साल से देखता आया हूं. मैं उसे बैठने का इशारा करता हूं, सोफे की ओर उंगली उठा कर. मैं देखता हूं, सहसा ही उसे सोफे पर बैठने का साहस नहीं होता. वह नीचे बैठने लगता है. मैं उससे ऊपर बैठ जाने के लिए कहता हूं. वह डरते-डरते, सिकुड़ कर ऊपर बैठ जाता है. दो-चार मिनिट तक वह कमरे की तस्वीरों—किताबों को देखता रहता है. 'ये आक्खी (सब) किताबें तुमेरी हैं, साब?' वह पूछता है. मैं स्वीकृति में सिर हिला देता हूं. फिर धीरे-धीरे बात शुरू होती है—'तुम वहीं धारावी में रहते हो क्या?'

'हां, साब,' चाय पीने के बाद वह कुछ-कुछ खुलने लगता है. पूछने पर वह बतलाता है कि 'काला किल्ला' के पास जहां वह रहता है, ज्यादातर चमड़े का काम होता है. उसका बाप भी यही काम करता है. वह महात्मा फुले टेक्नीकल हाई स्कूल में पढ़ता है. इतवार के दिन हॉस्टल में आकर वह 'पालिश' करता है.

'तुम्हारे पास 'खोली' (कमरा) है?'

'हां, पक्की है. दादा के समय की है. वही पहले बंबई आया था. बाप तो उसकी मरम्मत भी नहीं करता. अब टूटने लगी है.' आगे वह कहता है—'घर में मां है, बाप है और बस वह है. एक बहिन है. वह मामा के घर में रहती है. अपने घर का खर्चा नहीं चलता, इसी लिए. बाप, मां को रोज डेढ़ रुपया देता है, कहता है, इसी में चलाओ. वैसे साब' उस की आमदनी भी ज्यास्ती नहीं है. मां पहले पास ही चना-फैक्ट्री में काम करती थी, एक रुपये रोज पर. अब चूना-फैक्ट्री टूट गई. मां आजकल बेकार है.

'घर का खर्च कैसे चलता है?' मैं पूछता हूं.

'हमेरे घर में 20 रुपये महीने का राशन आता है. पांच रुपये खोली के चले जाते हैं. छह पैसे की चाय की पुड़ी और पांच पैसे का दूध चाय के लिए . . .'

'लेकिन तुम्हें पांच पैसे का दूध देता कौन है?' मैं उसे बीच ही में टोक देता हूं.

'हमेरे बरोबर वाले की बाई है, साब. वह सेंटर से एक बाटली दूध अपना लाती है. दो-तीन बाटली (बोतल) और ले आती है, सेंटर वालों

को कुछ देकर. फिर उसमें उतना ही पानी मिला कर एक बाल्टी में भर लेती है. हमेरे पड़ोस के सब उसी से दूध लेते हैं. जिसको जितना चाहिए, पैसे का लो चाहे दस पैसे का. कभी-कभी हम भी दस पैसे का लेते हैं.'

'वह दूध में पानी मिलाती है, तुम पुलिस में उसकी शिकायत क्यों नहीं कर देते?' मैंने सुझाव दिया.

'साब', फिर हमें पांच पैसे का दूध कौन

जीवन - एक आकलन

कु. मालती गेनू दलवी

राघू गायकवाड़

इस स्तंभ के माध्यम से 'पराग' नगर-नगर में एक दर्पण घुमाना चाहता है, जिस में भारत के हर कोने से विकासवान किशोर-वर्ग के दिल की धड़कनें और दिमाग की फुलांचें 'पराग' के इन कालमों तक पहुंच सकें. स्तंभ का उद्घाटन बंबई के रामनारायण रुइया कालेज के हिंदी के प्राध्यापक तथा जाने-माने लेखक डा. देवेश ठाकुर ने अगस्त अंक में किया था. बंबई महानगरी होने के कारण उन्होंने वहां के किशोर को भी तीन वर्गों में बांट दिया था. पहले उच्च तथा मध्यम वर्ग से भेंट-वार्ता करके जो परिणाम उन्होंने निकाले, वे आप क्रमशः अगस्त और सितंबर के अंकों में पढ़ ही चुके हैं. अब निम्न वर्ग के बारे में उन के विस्मयजनक निष्कर्ष इस लेख में प्रस्तुत किए जा रहे हैं.

इस अंक के बाद अब हम यह दर्पण भारत की राजधानी दिल्ली में घुमा रहे हैं. दिल्ली के किशोर-वर्ग को बंबई की तरह ही हम तीन वर्गों में बांट रहे हैं. अगले अंक में आप राजधानी के उच्चवर्गीय किशोर-किशोरियों के जीवन और विचारों की झलक देखेंगे.

—संपादक

देगा?' वह हँसने लगता है.

लेकिन शिवाजी पवार को हँसी शायद ही कभी आती हो. उसका कारण यही हो सकता है कि वह अपनी बेबस और संघर्ष से भरी जिंदगी की सच्चाई को ज्यादा अच्छी तरह जानता है. उसकी माँ है, एक बहिन है और एक बड़ा भाई है जो कुर्ला के एक छोटे-से होटल में 'मैनेजर' है. 62 रुपये माहवार पर. शिवाजी खुद कॉलेज की कैंटीन में काम करता है. उसे 45 रुपये मिलते हैं, खाना मिलता है, चाय मिलती है और यूनीफॉर्म भी. 20-30 रुपये वह अपनी माँ को गाँव में भेज देता है. 10-15 रुपये अपने जेब-खर्च के लिए रख छोड़ता है. एक सनलाइट, एक हमाम और एक शीशी तेल उसे हर महीने लगता है. सिगरेट कभी-कभी पी लेता है. किसी दिन, किसी महीने में एकाध पिक्चर भी देख लेता है.

शिवाजी पाँचवीं कक्षा तक पढ़ा है. अब आगे इसलिए नहीं पढ़ता कि 'छोटे-छोटे लड़कों के साथ बैठने को अच्छा नहीं लगता, शरम आती है.' चाहता है कि कहीं फैक्ट्री में काम मिल जाए. 'लेकिन अपन गरीब आदमी हैं, कोई बड़ी पहचान नहीं. फैक्ट्री में कौन काम देगा.' कह कर उदास हो जाता है.

यह उदासी रामचंद्र मुलिक में बिल्कुल नहीं है. रामचंद्र के माँ-बाप बेलगाँव में रहते हैं. परिवार में 6-7 लोग हैं. कभी, जब सम्मिलित परिवार था, चाचा ने बंबई में आकर तमाशा कंपनी खोली थी. उसमें नुकसान हो गया. तब से उसके बाप के हिस्से दो-तीन हजार का कर्ज चल रहा है. 'उसे उतारना है, साब! फिर शादी बनाएगा.'

रामचंद्र सातवीं तक पढ़ा है. एक होटल में काम करता है. पहले मसजिद बंदर में था. 52 रुपये मिलते थे. वहाँ सेठ से झगड़ा हो गया. 'अब 50 मिलते हैं. दूसरे-तीसरे महीने माँ को 20-30 रुपये भेज देता हूं. बाकी बचता ही नहीं. दस रुपये पान में निकल जाते हैं. 5-10 साबुन तेल में और 10-15 रुपये पिक्चर में, नाटक में.'

रामचंद्र बाप का चहेता है, माँ से उसकी बनती नहीं. 'माँ बड़े भाई को ही चाहती है. आखिर बाप का भी कोई होना चाहिए.' वह कहता है.

लेकिन सोलह बरस की गोपा मुतु को अपनी माँ ज्यादा प्यारी है. मेरे एक मित्र के घर में काम करती है. तमिल भाषी है लेकिन हिंदी खूब अच्छी बोल लेती है. 10 साल की उमर से वह काम कर रही है. तब 15 रुपये मिलते थे, अब 40 रुपये मिलते हैं. सब पैसा अपनी माँ को दे देती है. पिक्चर देखने का शौक है. माँ उसे महीने में एक पिक्चर दिखा देती है. गहनों में उसे चूड़ियाँ अच्छी लगती हैं. खूब गहरी रंग-बिरंगी चूड़ियाँ. घर में तीन बहिनें और हैं. सब की, सब मिला कर 15-20 साड़ियाँ हैं. बाप वाचमैन है. उसे दो खोली का मकान मिला है. लेकिन गोपा को दुख है कि उसमें न तो लाइट है और न पानी ही. और बाप से बार-बार कहने पर भी अभी तक घर में 'ट्रांजिसटर' नहीं आ सका है.

गोपा मुतु की तरह मालती दलवी भी घरेलू काम करती है. सत्रह साल की है. छठी पास है. बाप सैलून में काम करता है. 105 रुपये मिलते हैं. मालती तीन घरों में काम करती है. 90 रुपये कमा लेती है. ये सारे रुपये वह अपनी माँ को दे देती है. उसे गहनों का शौक है. कान की कुड़ी (कर्णफूल), हाथ की अँगूठी और नाक की नथुनी वह बनवा चुकी है. पान खाती है. एक-दो महीने में एकाध पिक्चर भी देख लेती है. तेल-साबुन में 2-3 रुपया खर्च करती है. सिर में आँवले का तेल डालती है. लाइफ़ ब्वाय से नहाती है. अपने कपड़े सनलाइट से धोती है. चंचल है, हँसमुख भी. संकोच जैसी कोई चीज नहीं है उसमें. खूब खुल कर बात कर लेती है.

मालती दलवी के विपरीत 18 साल का राघू गायकवाड़ धीरे-धीरे समझा-समझा कर बोलता है. संकोच उसमें नहीं है. लेकिन इस छोटी-सी उम्र में उसने जितना देख-सह लिया है, उससे एक दहशत-सी पैदा हो गयी है. हमारा यह किशोर आज भी जिन परिस्थितियों में रह रहा है, वे उसके मन में और भी अकेलेपन की भावना ही पैदा कर सकी हैं. वह 7-8 साल का था, जब माँ के साथ बंबई चला आया था. माँ घरेलू काम करती थी और वह गाड़ी की सफाई करने लगा था. 1-2 रुपया कमा लेता था. पाँच-छह साल तक वह बंबई की सड़कों पर गाड़ियों की सफाई का काम करता रहा. इसी बीच माँ दमे की बीमारी से चल बसी. इधर वह एक आदमी के चक्कर में फँस कर सभी 'गंदी' बातें सीख गया. मेरा यह भटका हुआ दोस्त बड़ी संजीदगी से मुझे बतलाता है कि उस आदमी के

साथ सभी गंदी जगहें उसने देखीं. मेरी लाइन खराब हो गई. एक लड़की भी इन्हीं दिनों मुझे टकराई. उसने भी मुझे बिगाड़ा. सारा पैसा उसी पर खर्च होने लगा. खुद भूखा रहने लगा. हालत बहुत खराब हो गई.'

संयोग से उसे पी. एम. रोड पर एक 'पियन' की नौकरी मिल गई. 90 रुपये पाने लगा. इसके बाद उसकी 'लाइन' कुछ सुधरी और वह अपनी मौसी के यहाँ वर्ली में रहने लगा. लेकिन वहाँ आज़ादी नहीं थी, सो 2-4 महीने के बाद एक दिन मौसी का घर छोड़ दिया. एक पहचान वाले के यहाँ खाने का इंतज़ाम किया. 50 रुपये उसी में जाने लगे. सोने की चिंता नहीं थी. बंबई में फुटपाथ बहुत हैं. कुछ दिन के बाद काम छूट गया. एक बार फिर उसे मौसी के पास आना पड़ा. लेकिन काम मिलने पर उसने फिर घर छोड़ दिया और एक बार फिर उसकी ज़िंदगी झोपड़-पट्टी से निकल कर फुटपाथ पर आ गई. गनीमत है कि उसकी 90 रुपये की नौकरी अभी तक बरक़रार है.

●

मेरे इन किशोर साथियों में अपनी स्थिति और परिवेश के अनुकूल आकांक्षाओं के अंकुर भी पल रहे हैं. शिवाजी पवार चाहता है कि कहीं फैक्ट्री में लग जाए. नारायण गदरे अपनी मैट्रिक की पढ़ाई पूरी करके 'टैक्नीकल इन्स्टीट्यूट' में जाने की सोचता है. वह कहता है 'साब', अगर कहीं से पैसा मिल गया, तो अपनी मशीन डालूंगा, नहीं तो नौकरी ही करनी पड़ेगी.' रामचंद्र थोड़ा रसिक है. उसकी बड़ी इच्छा है कि कहीं किसी फ़िल्म वाले के घर में काम मिल जाए तो शायद आने वाले दिनों में कुछ चमत्कार हो जाए. राघू गायकवाड़ आज भी अपनी व्यक्तिगत समस्याओं में उलझा हुआ है. रोमांस चीज़ ही ऐसी होती है कि वह कुछ और सोचने-समझने ही नहीं देती. उसने बहुत जीवन देख लिया है. बंबई के बहुत से धंधों का उसे अनुभव है. एक लड़की से उसकी दोस्ती चल रही है. लेकिन लड़की के मां-बाप नहीं चाहते कि दोनों एक हो जाएं. राघू कहता है—'मेरे न कोई आगे है न पीछे. लड़की का भाई स्मगलर है, बाप शराबी है, गाड़ी खींचता है. उन्होंने कभी पीठ में छुरा घुसेड़ दिया तो अपन क्या करेगा ?' फिर भी उसके मन में ड्राइविंग सीखने की चाह है. 'पैसा इकट्ठा कर रहा हूं. 250-300 रुपये लगते हैं. ड्राइविंग सीख लूंगा, तब कहीं शायद रहने का पक्का ठिकाना हो सके.' वह मुझ से बड़ी संजीदगी से कहता है.

गोपा की मंगनी हो चुकी है. लेकिन पहले बड़ी बहन की शादी हो जाए तो घर वाले उसकी बात सोचेंगे. मालती अपने काम से खुश है उसे पैसे का चसका पड़ गया है. कहती है, 'शादी के बाद भी काम करूंगी.'

शिवा जी पवार के अलावा सबको फ़िल्म में रुचि है. एक बड़ा साम्य मैंने अपने इन साथियों में देखा है. ये सभी ज्यादातर हिंदी फ़िल्में देखते हैं और राजेश खन्ना और मुमताज़ इन के चहेते हैं.

'तुम्हें मुमताज़ ही क्यों अच्छी लगती है?' इस प्रश्न के उत्तर में एक साथी मुझे बतलाता है—'साब मुमताज़ बस मुमताज़ है. वह दारा-सिंह और देवानंद दोनों से एक सरीखा एक जैसा प्यार कर लेती है.'

●

राघू का राजनीति से कोई वास्ता नहीं है. नारायण गदरे कहता है—'सब पार्टी एक सरीखा है, सर ! जो हमारी फीस दे दे, हमारी किताबों से मदद कर दे, वही अच्छा है. नहीं तो सब एक सरीखा है. शिवाजी पवार भी राजनीति को लफ़ड़ेबाज़ी समझता है. एक बार किसी ने उससे शिवसेना का मेम्बर बनने को कहा. वह बोला—'नहीं बनेगा'. 'यह तो फुटपाथी वालों का काम है, साब.' कल जेल में जाएगा तो होटल में नौकरी भी नहीं मिलेगा.'

उसने आगे मुझसे कहा—'हम इस लफ़ड़े में नहीं पड़ता, साब.' एक के साथ जाएगा तो दूसरे की मार खानी पड़ेगी.'

शिवाजी के विपरीत रामचंद्र मुलिक पक्का शिव-सैनिक है. वह मुझसे कहता है—'अपना धर्म मराठा है. अपन मराठा है. शिव-सेना मराठी संस्था है. तो अच्छी लगनी ही हुई.'

गोपा और मालती राजनीति नहीं समझतीं.

●

प्रेम, विवाह और सैक्स की बात चलने पर गोपा और मालती ने सकुचा-सकुचा कर बतलाया कि उनका किसी से कोई प्रेम व्रेम नहीं है. फिर भी मालती ज़रा 'बोल्ड' है. कहती है—'घर में मां-बाप शादी की बात करते तो हैं, लेकिन मैं अभी नहीं करूंगी'.

मैं उससे पूछता हूं—'लेकिन जब भी करेगी तो कैसे लड़के से करेगी?'

वह फिर शरमा जाती है, लेकिन बतलाती है—'लड़का अच्छा होना चाहिए, मेहनती होना चाहिए और. . . . सुंदर तो होना ही चाहिए.'

आगे पूछने पर वह कहती है—'आफिस वाला लड़का मांगता, फैक्ट्री में भी हो तो चलेगा. पगार 200-300 होना मांगता.'

गोपा मृदु का कहना है कि लड़का अपनी जातवाला होना चाहिए. डी. एम. के. वाला. कम पैसे भी कमाता हो तो कोई बात नहीं. लेकिन कैरेक्टर वाला, अच्छा होना ही चाहिए.

'लेकिन तू कैसे पता लगाएगी कि लड़का अच्छा है?' मेरी बात सुनकर वह हँस देती है, लेकिन तपाक से उत्तर भी देती है—'थोड़ा घूम-घाम कर पता लगाएगी कि वह कहां-कहां जाता है, क्या-क्या करता है?'

गोपा अपना पति अपने आप खोजेगी जबकि मालती थोड़ा-बहुत अपने माता-पिता पर निर्भर करना चाहती है.

और जब मैंने अपने दोस्त शिवाजी पवार से पूछा कि किसी लड़की-बड़की से दोस्ती है कि नहीं, तो वह बड़े निरीह स्वर में बोला—'साब', अपन तो एक ही लाइन पकड़ेला है, अपने काम की लाइन. किसी छोकरी से अपन दोस्ती नहीं करेगा. अपन दोस्ती बनाएगा तो छोकरी के साथ होटल में बैठेगा, पिक्चर जाएगा. दादर-चौपाटी जाएगा. कितना खर्च होगा, साब'. फिर एक से टूटेगा, दूसरे से जोड़ेगा. नहीं, साब', अपन को यह सब नहीं चलेगा. अपन तो दो पैसे जोड़ेगा तो बढ़ेगा. फिर भाई कुछ मदद करेगा तो शादी बनाएगा.'

शादी के मामले में नारायण शंकर गदरे के बड़े 'होमली' विचार हैं. पर कहता है—'अपन तो कपड़ा देख के शादी बनाएगा नहीं, उसका दिल देख के करेगा. मुझे तो ऐसी लड़की चाहिए जो घर में सबसे प्यार करने वाली हो. मा-बाप से प्यार करने वाली हो. मुझ से प्यार करने वाली हो. दीदी से प्यार करने वाली हो. उसका दिल अच्छा होना मांगता. बस.

लेकिन अपना रामचंद्र, अपनी उम्र के अनुसार रसीला है. शादी-वादी की बात वह अभी नहीं सोचता. गांव में था, उस की तब भी कोई सहेली थी. एक बार रंगे हाथों पकड़ा गया तो पिटाई हुई. तब से गांव के रोमांस की छुट्टी हो गई. 'आजकल' रामचंद्र बतलाता है—'यहां बंबई में भी एक छोकरी है अपनी. कारखाने में काम करती है. एक-दो बार उसके साथ घूम लिया हूं. वह शादी बनाने को कहती है.'

'तो तुम्हारा क्या इरादा है?'

'उससे शादी तो नहीं बनाएगा,' वह कहता है.

'क्यों?' मैं पूछता हूं.

'चालू है, साब.' उसके साथ और भी लड़के लगेले हैं.'

●

'पराग' के माध्यम से अपने किशोरों से मिलना मेरे लिए एक अच्छा संयोग रहा है. अपने देश में आधे से अधिक किशोर राघू और रामचंद्र, मालती और गोपा, शिवाजी और नारायण-सी अनिश्चित और उपेक्षित ज़िंदगी बिता रहे हैं. यह उतना ही उनका भी देश है, जितना हमारा. हमारा अर्थात् उनका जिनको जीवन की सामान्य सुविधाएं प्राप्त हैं. हमारा यानी शबनम और रेशमा का; रांगणेकर और सिंघा-

लिया का और साथ ही शैलेश और अशोक का, मंजुला और रीता का भी. लेकिन हमारे इन सामान्य वर्ग के किशोरों ने जीवन को कितने पास से देख लिया है, हम में से बहुतेरे, पूरा जीवन बिता देने पर भी उतना नहीं देख सकेंगे.

राजू गायकवाड़ मुझे बतलाता है कि आजकल जिस लड़की के यहाँ वह खाना खाता है, वह पी. एम. रोड के पास बोहरा स्ट्रीट के एक कमरे में रहती है. '14—20 के उस कमरे में उसके अलावा 8 जोड़े अपने बच्चों समेत और रहते हैं. उसी कमरे में वे खाना पकाते हैं, उसी में सोते हैं, उसी में प्यार करते हैं. वहीं उनके बच्चे पैदा होते हैं और कई वहीं मर भी जाते हैं.'

बड़े नगरों में हमारे ये सामान्य किशोर ऐसे ही या इससे मिलते-जुलते परिवेशों के बीच बड़े होते हैं. कोई इन्हें दारू के धंधे में लगाता है, कहीं ये स्मगलिंग का काम करते हैं; जो सीधे-सादे हैं—'बोल्ड' नहीं हैं, वे गाड़ी साफ करते हैं. सींगदाना बेचते हैं. होटलों में 20-25 रुपये महीने पर 12-12 घंटे काम करते हैं. अधिकांश किशोर पढ़ने की उम्र में काम पर लग जाते हैं. अभावों से भरी जिंदगी के बीच मन बहलाने के लिए ये गुच्ची या पत्ते खेलते हैं. पैसे हुए तो कोई स्टंट पिक्चर देख लेते हैं. इनके सामने खुली हुई सड़कें होती हैं; कोठे होते हैं. गलियां होती हैं; शराब की भट्टियां होती हैं. इन सब को ये अपनी खुली हुई आंखों से देखते हैं और देखते-देखते यह सब कुछ इनके जीवन का अंग बन जाता है.

दूसरी ओर जो, इन सबको देखते हुए भी, इन्हें अपने जीवन का अंग नहीं बना पाते, वे होटलों में, आफिसों में, सेठ-सेठानियों के घरों में, कारखानों में और बनते हुए भवनों की सीढ़ियों के आस-पास अपनी घिसटती हुई जिंदगी बिताते हैं. सूखी व पाव-रोटी खाते हैं और एक बनियान और नेकर पहनकर पक्के फुटपाथों के ऊपर पूरे साल की रातों को बिता देते हैं. रात, जो कभी इन्हें भिगोती है, कभी घुटन और उमस देती है और कभी इनकी टांगों को इनके पेट के भीतर डाल देती है. इन की जिंदगी एक गठरी बन जाती है और हमारे समाज के कंधों पर हमारी इन नई-नई बनती हुई गठरियों का बोझ हर रोज बढ़ता जाता है.

●

हमारी समाजवादी सरकार हमारी किशोरियों को फारस रोड और कमाठीपुरा की गलियों में अपने शरीर को बेचने का 'लाइसेंस' देती है. हमारी सरकारें, यह जानते हुए भी कि लाटरी टिकटों के नाम पर ज्यादातर गरीबों की जेब का ही शोषण होता है, एक ओर इन लोगों में जुए की प्रवृत्ति बढ़ा रही है और दूसरी ओर उन्हें निष्क्रियता और भाग्यवाद की ओर पीछे घसीट रही है. हमारी सरकार की पुलिस के पहरे में सिनेमा हाउसों और रेलवे स्टेशनों पर टिकटों का ब्लैक होता है. और इन सब कामों में हम अपने किशोरों का ही अधिक से अधिक उपयोग करते हैं. हम और हमारे नेता ऊंचे-ऊंचे मंचों से अपने किशोरों को राष्ट्र-प्रेम, अनुशासन और संयम का उपदेश देते नहीं थकते, लेकिन ऐसा करते हुए हम भूल जाते हैं कि हमारे देश के आधे से अधिक किशोरों के कदम गलत गलियों की ओर मुड़े हुए हैं और जिनको सीधे रास्तों पर लाने की किसी योजना का विचार भी हमारे मन में नहीं आता. और तब मेरे मन में एक प्रश्न बार-बार उठता है कि एक विकासशील और अपने को समाजवादी कहलाने वाला देश अपने किशोरों की आधी से अधिक शक्ति को क्या यों ही घूरे में फेंक सकना 'एफोर्ड' कर सकता है? ●

प्रोफेसर्स फ्लैट्स,
रा. सुइया कॉलेज हॉस्टल, शीव, बंबई-22

आगामी अंक का झरोखा

पराग

दीप-दिवस विशेषांक— नवंबर 1971

[अब बड़े आकार में 64 पृष्ठ, मूल्य 50 पैसे]

प्रमुख आकर्षण

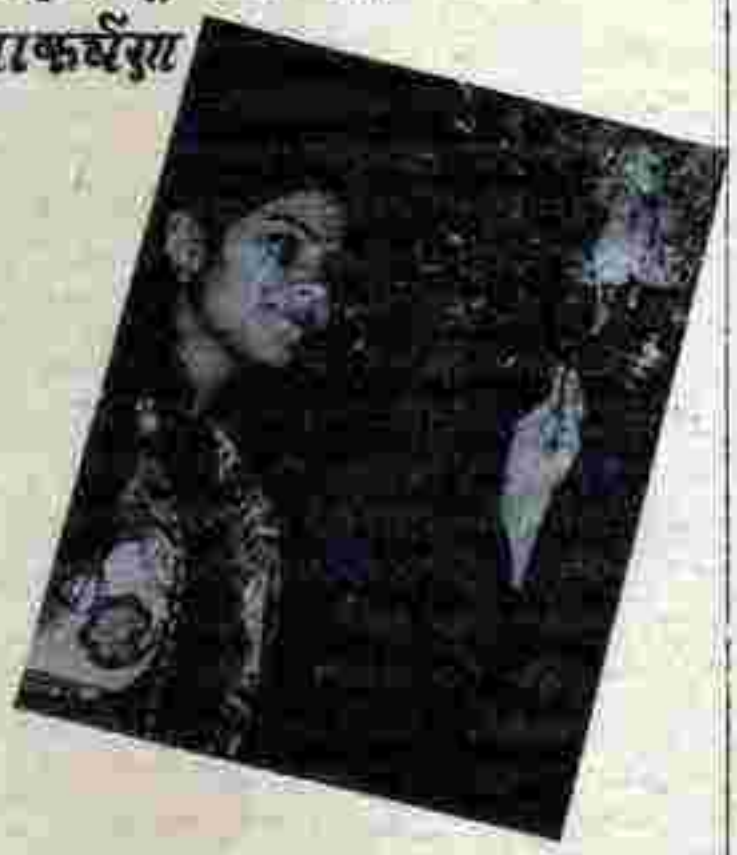

☐ **8 मनोरंजक कहानियां**

★ एक नया दुनियादार — देवेश ठाकुर
★ मास्टर जी — सुषमा मल्होत्रा
★ ममतामयी — वीरकुमार अधीर
★ हंसी के आंसू — प्रदीपकुमार
★ मामा जी — राधेश्याम शर्मा
★ नीलम की आंखें — कैलाशचंद्र सक्सेना
★ निर्णय — यादराम रसेन्द्र
★ परिवर्तन — बागीशकुमार सिंह

☐ **साथ ही**

★ **'क्या जासूसी उपन्यास किशोरों के चरित्र-निर्माण में बाधक हैं?'** परिचर्चा की समापन किस्त—'वर्जित फल' स्तंभ के अंतर्गत.

★ **भारतीय किशोर-जीवन—एक आकलन**—दिल्ली (उच्च वर्ग)—**'नगर नगर में घूमता आईना'** स्तंभ के अंतर्गत.

★ **'फिल्मी कोना'** स्तंभ में पढ़िए अभिनेत्री नाजिमा से रोचक भेंट-वार्ता.

☐ **और**

★ दीपावली के रंग में रंगी **'छोटू-लंबू'** कार्टून-कथा के साथ ही **'पुराणमल-नवकुमार'**—एक नई और दिलचस्प कार्टून-कथा.

★ **रंग भरो प्रतियोगिता** ★ **उद्धरण प्रतियोगिता** ★ **फोटो शीर्षक प्रतियोगिता** ★ **आपके पत्रों से** आदि स्तंभों के साथ अनेक नए आकर्षण.

टाइम्स ऑफ इंडिया का गौरवशाली प्रकाशन

www.kissekahani.com

एक गुदगुदी कहानी

बदले पर दहला

दादा जी ने चौथी बार उस समाचार को पढ़ा. इससे उस समाचार पर कोई प्रभाव न पड़ा; न वह मिटा न बदला. दादा जी बेचैनी से कमरे में टहलने लगे. उनके दिमाग में एक ही विचार गोल-गोल चक्कर काट रहा था—क्या ऐसा हो सकता है?

अखबार के प्रथम पृष्ठ पर मुख्य समाचार के लगभग पंद्रह सेंटीमीटर नीचे छपा था कि इस वर्ष दिल्ली के स्कूलों में परीक्षा नहीं होगी. सभी छात्र बिना परीक्षा के अगली कक्षा में चढ़ाए जाएंगे. यदि यह प्रयोग सफल रहा, तो आगामी वर्षों में भी स्कूलों की वार्षिक परीक्षाएं समाप्त कर दी जाएंगी और उनके स्थान पर मासिक टैस्ट हुआ करेंगे. इस समाचार से यह तो स्पष्ट था ही कि इस वर्ष सारे बच्चे बिना परीक्षा के पास हैं. आगे की राम जाने. यदि आगे के लिए भी वार्षिक परीक्षा समाप्त कर दी गई, तो स्कूलों का क्या बनेगा? देश का क्या बनेगा?

दादा जी को समाचार की सच्चाई पर विश्वास ही न होता था. सरकार को परीक्षा समाप्त कर क्या लड्डू मिलेंगे! परीक्षा नहीं, तो स्कूलों का क्या लाभ? तो क्या स्कूल भी बंद कर दिए जाएंगे? नहीं, अवश्य ही यह समाचार भूल से छप गया है. यह भी हो सकता है कि संपादक ने जगह भरने के लिए इस समाचार को जान-बूझकर छापा हो और कल इसके लिए क्षमा मांग ले.

दादा जी 'नवभारत टाइम्स' लेते थे. वह 'हिंदुस्तान टाइम्स' देखने के लिए बबली के घर की ओर प्रस्थान करने के लिए सोच ही रहे थे कि बबली हाथ में एक लिफाफा लिये वहीं आ धमका. लिफाफे में मोतीचूर के लड्डू थे. उसने लिफाफा बढ़ाते हुए कहा—"दादा जी, मुंह मीठा कीजिए."

"सुबह-सुबह मुंह मीठा! किस खुशी में?"

"आपने आज का अखबार नहीं देखा? मैं पास हो गया हूं. आपके राजू-मुन्नू-पिंकी भी पास हैं. आपको भी मेरी तरफ से बधाई."

दादा जी ने बुझे स्वर में पूछा—"क्या तुम्हारे अखबार में भी इस वर्ष परीक्षा न होने का समाचार छपा है?"

"बिल्कुल छपा है, दादा जी. इतना बड़ा समाचार और किसी अखबार में न छपे, हो ही नहीं सकता. यह समाचार तो सभी अखबारों ने प्रथम पृष्ठ पर छापा है और मोटा-मोटा शीर्षक देकर छापा है. इसके कारण आज दिल्ली के हरेक घर में सुबह-सुबह घी की पूरियां पक रही हैं!"

दादा जी और बबली में वार्तालाप चल ही रहा था कि वहां टिकू स्टैंडर्ड बर्फी का डिब्बा लिये टपक पड़ा. उसने दादा जी के आगे डिब्बा खोला— "मुझे बधाई दीजिए, दादा जी, मैं पास हो गया हूं. इस वर्ष परीक्षा नहीं होगी और सच कहूं, तो हिंदी में मेरे पास होने का एकमात्र यही रास्ता था कि मुझे बिना परीक्षा के पास कर दिया जाए!"

डिब्बा खुलते ही स्टैंडर्ड बर्फी की भीनी-भीनी महक चारों ओर फैल गई. उस महक के कारण दादा जी ने टिकू की आधी बात सुनी, आधी नहीं सुनी. उन्होंने उसे बधाई तो न दी, हां, उसका दिल न दुखे इस लिए उसकी बर्फी अवश्य स्वीकार कर ली!

राजू और मुन्नू सो रहे थे. बबली और टिकू ने उन्हें जगाया. चारों गली में आ निकले और भंगड़ा नाचने लगे. पांच मिनिट के अंदर इस भंगड़े में गली के सारे बच्चे शामिल हो गए.

दादा जी ने घर का दरवाजा बंद कर लिया और अंदर विचारमग्न बैठ गए. भंगड़े का शोर उनकी विचार-धारा में बाधा डाल रहा था, किंतु उन्होंने बाहर आकर बच्चों को न टोका न रोका.

दादा जी ज्यों-ज्यों उस समाचार पर गहराई से विचार कर रहे थे, उनकी बेचैनी बढ़ रही थी. उनके मन में रत्ती भर भी संदेह बाकी न रहा था कि अब बच्चे पढ़ना छोड़ देंगे. जब परीक्षा ही नहीं होनी, तो बच्चों को क्या पागल कुत्ते ने काटा है कि वे पढ़ें? दो घंटे की गहरी माथा-पच्ची के पश्चात् दादा जी ने उस समस्या का हल ढूंढ़ निकाला. शेष दिल्ली में चाहे जो हो, अपने मुहल्ले के बच्चे वह कभी न बिगड़ने देंगे. आधा घंटा वह अपनी योजना की रूप-रेखा तैयार करते रहे. अंत में एक बढ़िया और प्यारी-सी योजना पककर तैयार हो गई. योजना बनाकर दादा जी का मन हाइड्रोजन गैस से फूले गुब्बारे जैसा हल्का हो गया. वह नहाने चले गए.

●

दादा जी का निमंत्रण पाकर सब बच्चे आ जुटे. सबके आ जाने पर दादा जी ने गंभीर स्वर में कहा—"आज सुबह अखबार में परीक्षा संबंधी एक समाचार छपा है जिसके कारण आज गली में भंगड़ा भी नाचा गया. सारे बच्चे कान खोलकर सुन लें कि उस समाचार में प्रसन्नता वाली कोई बात नहीं है. मैं तुम्हारी जानकारी बढ़ाने के लिए यह बता दूं कि परीक्षा

होगी और अवश्य होगी."

बच्चों पर जैसे बम गिरा. कानाफूसियां शुरू हो गईं. सुबह का छपा समाचार संध्या को गलत हो जाए, अजीब बात है! बबली ने पूछा—"दादा जी, क्या रेडियो ने उस समाचार का खंडन किया है?"

"नहीं, अखबार में छपा समाचार एकदम सही है."

बच्चों पर दूसरा बम गिरा. समाचार गलत नहीं है और परीक्षा भी होगी, दादा जी यह कैसी पहेली बुझा रहे हैं! टिकू ने नम्रता से पूछा—"दादा जी, आप दुविधा में पड़ गए हैं. आपने कहा है कि परीक्षा अवश्य होगी. दूसरी तरफ आप उस समाचार को ठीक बता रहे हैं जिसमें लिखा है कि परीक्षा नहीं होगी."

दादा जी ने ललकार कर कहा—"समाचार भी ठीक है, मैं भी ठीक हूं. उसमें लिखा है कि स्कूल परीक्षा नहीं लेंगे, तुम्हारी परीक्षा मैं लूंगा."

बच्चों की हंसी छूट गई. दादा जी क्रोध से लाल-पीले हो गए. बोले—"तुम हंसते क्यों हो? परीक्षा में फेल हो जाओगे तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा. कोई बच्चा किसी प्रकार के भ्रम में न रहे. जो मेरी परीक्षा में फेल होगा उसे एक वर्ष पुनः उसी कक्षा में बैठना पड़ेगा."

बबली बोला—"दादा जी, आप भी खूब मजाक करते हैं. जब स्कूल वाले हमें अगली कक्षा में चढ़ा देंगे, तो आप क्या जबरदस्ती नीचे उतार लेंगे?"

दादा जी गरजे—"मैं डंके की चोट कहता हूं कि मैं कोई मजाक नहीं कर रहा हूं. तुम लोग आंखें रहते भी अंधे हो. तुम नहीं देखते कि आए सप्ताह हेड मास्टर साहब मुझे अपने घर चाय पीने का निमंत्रण देते हैं. पिछले वर्ष वह तीन बार स्वयं मेरे घर पर मुझ से मिलने आए. मैं उन्हें उचित सुझाव दूं और वह न मानें, ऐसा हो ही नहीं सकता. मैं किसी भी अयोग्य छात्र को अगली कक्षा में नहीं चढ़ने दूंगा. मैंने सारे बच्चों के लिए परीक्षा का टाइम-टेबिल तैयार कर लिया है. जिसकी जब इच्छा हो, आकर मेरे कमरे में टाइम-टेबिल देख सकता है."

बच्चों को वहीं हक्का-बक्का छोड़कर दादा जी वापस अपने कमरे में चले आए.

दादा जी की इस घोषणा से सहसा टूट पड़े संकट का सामना करने के लिए बच्चों की एक इमरजेंसी मीटिंग हुई. दो-तीन योग्य बच्चों को छोड़कर शेष के चेहरों पर झाड़ू फिरी हुई थी. सब उदास थे.

बबली ने मीटिंग का श्रीगणेश करते हुए रुआंसे स्वर में कहा—"भाइयो और बहनो, मुझे आप सबको यह सूचना देते हुए अत्यंत खेद है कि सरकार ने परीक्षा न लेने का निर्णय कर हम बच्चों में जो प्रसन्नता बांटी थी, उसे यकायक दादा जी ने छीन लिया. इस मीटिंग में हमें यह निश्चय करना है कि दादा जी की धमकी में कितना दम है! यदि हम उनकी परीक्षा का बायकाट कर दें तो क्या वह सचमुच ही हमारा वर्ष नष्ट करने की क्षमता रखते हैं?"

पिंकी बोली—"दादा जी की धमकी कोरी गीदड़-भभकी नहीं है. जहां तक मेरा अनुमान है, दादा जी में किसी बच्चे को एक वर्ष नहीं, तीन वर्ष तक एक ही कक्षा में रोक लेने का साहस और क्षमता है. दादा जी और हेड मास्टर साहब के कैसे मधुर संबंध हैं, यह किसी से छुपा नहीं है. मैंने स्वयं देखा है कि कई बार हेड मास्टर साहब ने बाजार में मिलने पर दादा जी को पहले हाथ जोड़कर नमस्ते की."

पप्पू ने पिंकी का समर्थन किया—"मुझे भी गुप्त सूत्रों से सूचना मिली है कि परीक्षा-परिणाम घोषित करने से पहले हेड मास्टर साहब दादा जी से सलाह लेते हैं."

अन्य बच्चों ने भी अपने-अपने विचार प्रकट किए. सबने सर्वसम्मति से निर्णय किया कि दादा जी की परीक्षा उतनी ही भयानक है जितनी स्कूल की परीक्षा. बच्चों को यह परीक्षा देनी ही होगी या समस्या का दूसरा हल खोजना पड़ेगा?

बबली बोला—"पूर्व इसके कि हम परीक्षा पास करने का तरीका खोजें, हमें यह मालूम करना होगा कि दादा जी परीक्षा कैसे लेंगे? कहां लेंगे?"

—अवतारसिंह—

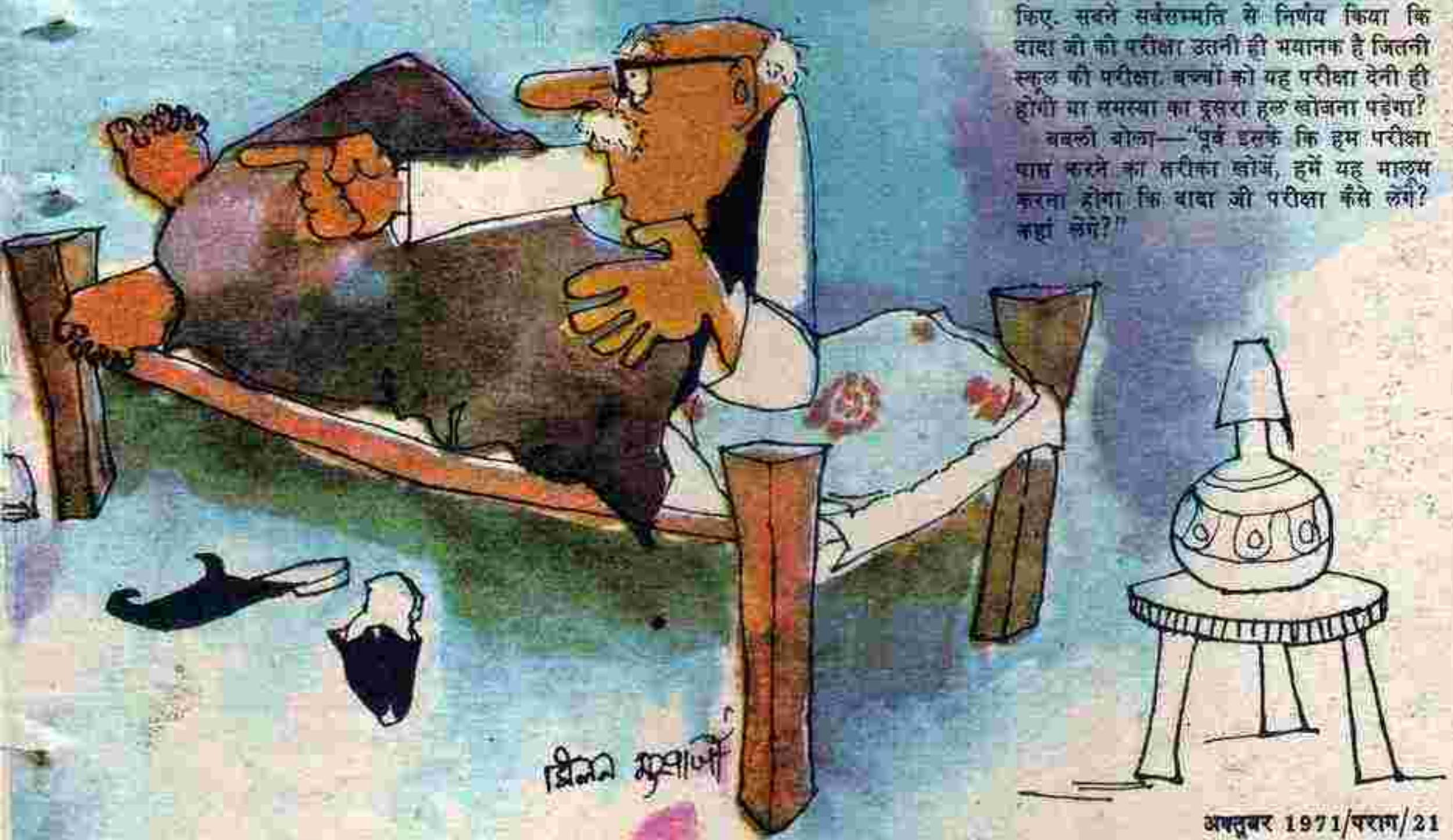

छुन्नू ने कहा—"सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि परीक्षा कहां होगी? मेरे विचार में दादा जी परीक्षा अपने घर के ड्राइंग रूम में लेंगे. वहां सब जने पास-पास बैठेंगे. इसलिए घबराने की ऐसी कोई बात नहीं है."

पिंकी ने प्रतिवाद किया—"दादा जी परीक्षा छत पर लेंगे. उन्होंने मुझे स्पष्ट बताया है कि एक ही कक्षा के दो छात्रों में कम से कम सात मीटर की दूरी अवश्य होगी."

बच्चे घोर निराशा में डूब गए. बबली ने मरे स्वर में पूछा—"जब तुम इतना कुछ जानती हो, तो यह भी जानती होगी कि दादा जी लिखित पर्चे देंगे या प्रश्न मौखिक लिखाएंगे?"

पिंकी ने उत्तर दिया—"प्रश्न-पत्र मौखिक होंगे और उसी समय बोलकर लिखाए जाएंगे."

बबली बोला—"इस समस्या का एक ही हल दीखता है—परीक्षा के दिन दादा जी को किसी अधिक जरूरी काम में उलझा दिया जाए ताकि वह परीक्षा न ले सकें."

पप्पू ने विरोध किया—"वह समस्या को हल करना नहीं, उसे टालना है. अधिक जरूरी काम आ जाने पर दादा जी परीक्षा के लिए कोई दूसरा दिन तय कर देंगे."

छुन्नू बोला—"जब हमें मौत के मुंह में कदम रखना ही है, तो जितनी जल्दी रखा जाए उतना ही अच्छा होगा."

बबली ने सोच-विचार कर दूसरी योजना तैयार की—"दादा जी को लिखित पर्चे देने पर विवश किया जाए. अवश्य ही दादा जी पर्चे परीक्षा से कम से कम चौबीस घंटे पहले तैयार करके कहीं रख देंगे. फिर राजू और मुन्नू उन पेपरों को लीक-आउट कर दें. मेरे विचार में राजू के लिए पेपर लीक-आउट कर देना कठिन काम नहीं."

राजू ने अड़चन बताई—"वाह! दादा जी के कब्जे में रखा पेपर लीक-आउट करवा लेना बाएं हाथ का खेल है क्या! इस काम के लिए मुझे और मुन्नू को हजार पापड़ बेलने पड़ेंगे. कुछ धन भी खर्च करना होगा. इसलिए सब जनों को हमें एक-एक रुपया चंदा देना होगा."

बच्चों में हो-हल्ला मच गया. सबने एक स्वर में इसका घोर विरोध किया. किसी की समझ में न आता था कि पेपर लीक-आउट करवाने में धन कहां खर्च होगा. कई बच्चों ने तो इस पुण्य कार्य के लिए राजू के चंदा मांगने की घोर निंदा की.

मुन्नू ने स्थिति संभाली—"यदि पेपर लीक-आउट करवाने में कोई धन न लगा, तो मुझे या राजू भैया को किसी से चंदा लेने का शौक नहीं है. इतना तो आप अवश्य मानेंगे कि इतना कठिन कार्य करने के पश्चात् प्रत्येक का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि हमें हमारे कठोर परिश्रम के बदले एक-एक कोकाकोला पिलाए."

एक रुपया चंदा देने पर कोई राजी न था, किंतु इस महान कार्य के बदले में किसी को भी राजू-मुन्नू को एक रुपये की कोकाकोला पिलाने में आपत्ति न थी.

यह योजना बनाकर किसी को संतोष न हुआ. इस योजना के फेल होने का पूरा-पूरा चांस था. क्या पता दादा जी परीक्षा से ऐन पहले ही परीक्षा-पत्र तैयार करें और राजू-मुन्नू के लिए उन्हें लीक-आउट करना संभव न हो. अंत में किसी दूसरी योजना के अभाव में मीटिंग समाप्त कर दी गई.

●

दादा जी ने बच्चों का लिखित पेपर देने का अनुरोध ऐसी निर्ममता से ठुकरा दिया जैसे कोई मिट्टी का टूटा बर्तन फेंक देता है. दादा जी बोले—"मैं सब समझता हूं. तुम लोग चाहते हो कि मैं पेपर लिखकर अलमारी में रख दूं, जहां से राजू-मुन्नू उसे लीक-आउट कर दें. मैं यह रिस्क नहीं ले सकता. हां, मैं फेल होने वाले बच्चों को पांच प्रतिशत ग्रेस के नंबर दूंगा. अगर फिर भी कोई पास नहीं होता, तो मैं कुछ नहीं कर सकता."

दादा जी ने जेब से एक पर्ची निकाली और परीक्षा के टाइम-टेबिल की घोषणा कर दी. बच्चों की योजना किसी सरकारी योजना की तरह आरंभ में ही खटाई में पड़ गई. बबली ने दादा जी को समझाने का प्रयत्न किया कि दादा जी अब समय बदल चुका है. परीक्षा लेना और देना पुराने जमाने की बातें हो चुकी हैं. आप हमें क्यों परेशान करते हैं? किंतु दादा जी परीक्षा लेने के अपने निश्चय से जौ भर भी न डिगे.

किसी की अक्ल काम न करती थी कि इस संकट से कैसे निपटा जाए? सबसे बुरी हालत बबली की थी. टिंकू ने उसे धैर्य बंधाया—"तुम परीक्षा की तैयारी तो करो. मेरे विचार में दादा जी किसी को फेल नहीं करेंगे. उन्होंने फेल किया भी, तो हेड मास्टर साहब को सूचना न देंगे. फिर मैं भी परीक्षा में तुम्हारी पूरी सहायता करने का प्रयत्न करूंगा."

बबली को किसी की सहायता पर विश्वास न था. वह परीक्षा के संकट से उबरने के लिए कोई ऐसी युक्ति निकालना चाहता था कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे. पहला पेपर था गणित का. समय तीन घंटे. अंक सौ. स्थान दादा जी के मकान की छत! पेपर शुरू होने में कुल चौबीस घंटे शेष थे.

●

दादा जी दोपहर का भोजन करके हटे थे और सोने की तैयारी में थे कि उनके पास बबली आया—बिखरे हुए बाल, कमीज पैंट के बाहर. निश्चय ही वह पिछले कई मिनिटों से कठोर परिश्रम कर रहा था. बबली ने आकर दादा जी को नमस्ते की और पूछा—"दादा जी, यदि हमें परीक्षा से पहले कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, तो उसे दूर करना आप का कर्त्तव्य है न?"

दादा जी ने प्रसन्न भाव से कहा—"बिलकुल! मैं तो कितना चाहता हूं कि तुम लोग मुझसे आकर सवाल पूछा करो."

"धन्यवाद, दादा जी! पढ़ाई करने में कितना संतोष और आनंद है इसे एक पढ़ाकू ही समझ सकता है. आप मुझे चक्रवृद्धि ब्याज का यह प्रश्न समझा दीजिए." बबली ने दादा जी के आगे किताब खोलकर रख दी. दादा जी ने पौना घंटा लगाकर स्वयं सारा गुणा-भाग-जमा-घटा कर बड़े प्रेम से बबली को सवाल समझाया. बबली प्रसन्न-चित्त वहां से विदा हुआ. पौना घंटा परिश्रम करके दादा जी का दिमाग थक चला था. वह सोने के लिए लेटने ही वाले थे कि टिंकू आ धमका. बोला—"दादा जी, आप को थोड़ा कष्ट तो होगा, किंतु मुझे हिसाब का एक सवाल समझा दीजिए."

"हां-हां, लाओ," दादा जी ने कहा. अब उनके स्वर में पहले जैसा उत्साह और प्रसन्नता न थी.

यह एक विचित्र संयोग ही था कि टिंकू ने दादा जी से वही प्रश्न पूछा जिसे अभी बबली पूछ कर गया था. दादा जी प्रश्न देखते ही बोले—"तुम यह प्रश्न जाकर बबली से समझ लो. मैं उसे समझा चुका हूं."

टिंकू ने कहा—"दादा जी, मैं अभी बबली के पास ही गया था. उसके पास दम मारने का भी समय नहीं है. वह 'काम और मजदूरी' के प्रश्न करने में व्यस्त है."

दादा जी मन मारकर टिंकू को प्रश्न समझाने लगे. टिंकू वहां से टला तो दादा जी के दिमाग में बड़ी लाइन की रेलगाड़ी दौड़ रही थी. उन्हें दोपहर में सोने की आदत थी. दिमाग के साथ-साथ उनकी आंखें भी बोझिल हो चली थीं. दादा जी को दो मिनिट का समय भी खाली मिला होता तो वह खर्राटे भर रहे होते. किंतु टिंकू के विदा होने के एक मिनिट के अंदर ही उनके कमरे में राजू आ पहुंचा. उसने भी दादा जी के आगे वही प्रश्न पेश किया, जो बबली और टिंकू समझकर गए थे.

दादा जी क्रोध से बोले—"तुम सब लोगों ने मिलकर मुझे तंग करने की स्कीम बनाई है! अभी-अभी टिंकू और बबली भी मुझसे यही प्रश्न पूछकर गए हैं."

राजू ने आश्चर्य से कहा—"टिंकू और बबली यहां आए थे, मुझे तो नहीं मालूम! मैं तो सुबह से अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा हूं. वास्तव में यह सवाल बहुत ही कठिन है. छठी कक्षा में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी की गाड़ी इसी सवाल पर अटकती है."

दादा जी व्यर्थ की बहस न कर राजू को सवाल

(शेष पृष्ठ 37 पर)

एक पार्टीबाज

एक

कहानी

www.kissekahani.com

सत्यस्वरूप दत्त

विशाल ने अर्थ भरी दृष्टि से मनीष को देखा और मनीष ने उसी दृष्टि से विशाल को देखा. वे दोनों के दोनों किशोर के निमंत्रण का अर्थ पूर्णतया समझ रहे थे और मन ही मन मुस्करा रहे थे.

"यार, आजकल पार्टियां कुछ अधिक ही होने लगी हैं," विशाल ने मनीष से कहा.

"कारण, हम भारतीय पूरे नहीं तो आधे अंग्रेज अवश्य हो गए हैं!" मनीष ने जवाब दिया.

"न भी हुए हों, किंतु समझते तो यही हैं. उन्हीं के अनुसार केक पर जलती मोमबत्ती बुझाकर कोरस में 'हैपी बर्थ डे टु यू' कहते हैं!" विशाल ने कहा.

किशोर कुछ झेंप गया. उसके कान दहक उठे—धूप में तपते लाल गुलाब जैसे. किंतु ऐसे अनेक अवसर उसके जीवन में आए थे अतः उसकी बोलती बंद नहीं हुई, उसने अपने को संभाल लिया.

"हैपी बर्थ डे टु यू. . . यह तो मेरे गले में भी अटकता है. यह कहने की आवश्यकता भी क्या है? 'जन्म-दिन शुभ हो' कहकर बड़े मजे से काम चलाया जा सकता है. फिर यह अनुकरण भी नहीं होगा," किशोर ने तर्क किया.

"अनुकरण तो नहीं होगा, अंग्रेजी परंपरा का अनुवाद तो होगा!" विशाल ने कहा.

"अभी कुछ समय तक अनुवाद से मुख नहीं मोड़ा जा सकता. धीरे-धीरे ही हम मौलिक बनेंगे," किशोर ने तर्क किया.

निमंत्रण देने के पश्चात् किशोर अधिक देर नहीं रुका. वह जानता था कि रुकेगा तो विशाल और मनीष उसकी और खिंचाई करेंगे, उसे और बोर करेंगे. खिसकना ही उसके लिए श्रेयस्कर था. फिर पार्टी के लिए उसे अन्य मित्रों को भी निमंत्रण देना था. किशोर के जाने पर विशाल ने मनीष से पूछा—"यह किशोर कितने वर्ष का होगा?"

"होगा अपने अरीब-करीब. . . बहुत होगा तो एक वर्ष बड़ा होगा या एक वर्ष छोटा. . ." मनीष ने कहा.

"बारह का ही मानो. जन्म लेने के इतने वर्ष पश्चात् अनायास अपना जन्म-दिवस मनाने का विचार उसके मस्तिष्क में कैसे उपजा? लगता है यह प्रेरणा उसे अशोक के जन्म-दिवस की पार्टी से मिली है," विशाल बोला.

"क्यों न मिले. समाजवाद का युग है. सब का जन्म-दिन मनना ही चाहिए. वैसे यह प्रेरणा उसे अशोक की पार्टी से नहीं, उसे मिले उपहारों से मिली. . .अन्यथा किशोर और पार्टी? अजी, राम भजो. वह परले दरजे का मक्खीचूस क्या पार्टी देगा! जेब में दस पैसे का सिक्का तक नहीं रखता, जैसे उसके बोझ से जेब फट जाएगी!" मनीष ने कहा.

"अशोक से तुलना करना व्यर्थ है. वह बड़े आदमी का बेटा है. अतः उसे बड़े-बड़े उपहार मिले. किंतु किशोर की पार्टी में तो हम सब छोटे-छोटे जीव ही होंगे, सीमित सामर्थ्य वाले जीव."

"अपने को तो महीने में पांच रुपये मिलते हैं. उन पांच में से चार चले गए तो अपन तो गए काम से महीने भर के लिए! गोकुल की चाट, मुरली की चाय आदि का क्या होगा?" मनीष ने सोचते हुए कहा. पूरा महीना सूखा निकालना उसे असंभव लग रहा था.

किशोर के कंजूस स्वभाव से उसका कोई मित्र अपरिचित नहीं था. उस का स्वभाव प्रायः उसके मित्रों की परेशानी का कारण बना था.

'यार, चाट खाने को एक अरसे से मन मचल रहा है. बहुत दिनों से अपनी हालत खस्ता चल रही है. आज अपनी ओर से चाट खिला दे. तेरी ऊपर की जेब में दो का नोट चमक तो रहा है!' किसी भी मित्र की जेब में नोट देखकर किशोर उससे चिपक जाता. 'यार, आजकल तेरे बाग के पपीतों पर बहार है. क्या बड़े-बड़े पपीते हैं, देखकर मुंह में पानी आ जाता है! कैसे मित्र हो कि तुम्हारे मित्र बाग के बाहर खड़े-खड़े पपीतों के लिए ललचते हैं!' यह शिकायत भी किशोर की होती.

किशोर के पैन में स्याही न होना नित्य की बात थी. यह स्याही मित्रों के पैनों से भरी जाती. किसी मित्र के घर में होता, तो किशोर स्याही की शीशी मांगने में एकदम संकोच नहीं करता. नागरिक-शास्त्र की पुस्तक उसने इस वर्ष खरीदी ही नहीं थी. कभी वह पुस्तक अशोक से मांगता, कभी विशाल से, कभी मनीष से, कभी. . .!

और वही किशोर अपना जन्म-दिन मना रहा था. घर-घर आकर मित्रों को आमंत्रित कर रहा था. कोई कैसे आश्चर्य न करता? कैसे पार्टी के पीछे छिपे रहस्य पर विचार न करता?

इन दिनों मित्र-मंडली की चर्चा का विषय किशोर की पार्टी थी. सब पार्टी को लेकर अटकलें लगा रहे थे. किसी का अनुमान था कि उसके नाम लाटरी खुल गई है. कोई कह रहा था कि उसे मित्रों के असंतोष की भनक लग गई है, पार्टी देकर वह अपनी स्थिति सुधारना चाहता है, मित्रों की शुभ कामनाएं अर्जित करना चाहता है. किसी का विचार था कि वह मान-अपमान से परे है, उसका उद्देश्य उपहार बटोरना है. अधिकांश का मत यही था कि किशोर उपहार बटोरना चाहता है. शुभ कामनाओं या सामाजिक प्रतिष्ठा का उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं.

किशोर का मंतव्य कुछ भी हो, किंतु उपहार तो सबको देना था. उपहार का प्रश्न उन सब के मनों को मथ रहा था. पार्टी का बहिष्कार करने का, विशेष रूप से किशोर की, किसी का मन नहीं था. बहुत नहीं रखेगा तो पार्टी के नाम की लाज रखने के लिए कंजूस-शिरोमणि कुछ तो रखेगा, सामान्य से अधिक कुछ, दो मिठाइयों से कम क्या रखेगा? दो मिठाइयों में से एक रसगुल्ला या रसमलाई होगी. कलाकंद भी रख सकता है. साथ में एक-दो नमकीन चीजें भी रहेंगी. नमकीन काजू न सही, दाल-मोठ तो रखेगा. कॉफी नहीं रखेगा, किंतु चाय तो रखेगा.

किंतु उपहार? उपहार दिया तो जा सकता है, किंतु किशोर का कोई भरोसा नहीं. पार्टी उन्नीस रही और उपहार बीस रहा, तो उपहार देना बहुत दिन तक चुभता रहेगा, हृदय को कचोटता रहेगा. पार्टी के अठारह या सत्तरह रहने की स्थिति में यह कचोट असह्य हो जाएगी. विचित्र स्थिति है. उपहार देना भी मुसीबत और न देना भी. किशोर के सब मित्र दो दिन तक दुविधा की गहरी जल-राशि में अनाड़ी तैराक-से गोते खाते रहे—डुबुक-डुबुक! जब किसी की अकेली अक्ल में कुछ नहीं आया तो संयुक्त बैठक की योजना बनी.

बैठक एक घंटे तक चली. किशोर की नस-नस पहचानने वालों ने उसके इरादों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया. उसकी पार्टी के मीनू की झलक देने की चेष्टा की. इसके अनंतर अपनी चादर देखकर पांव फैलाने वाले लड़कों ने उपहारों के प्रति अपना मत प्रकट किया कि सस्ता एवं सुंदर उपहार क्या हो सकता है. अंत में प्रगतिशील विचारधारा के दो लड़कों ने अपनी योजना सामने रखी. बैठक असाधारण रूप से सफल रही. जब सब बाहर निकले, तो अनिश्चय की घटाओं को चीरकर सुरक्षित निश्चय का सूर्य सबके चेहरों पर जगमगा रहा था.

●

किशोर का मुख प्रसन्नता से खिल उठा अशोक को देखकर. अशोक के हाथ में हरे महीन कागज में लाल रिबन से बंधा बड़ा-सा पैकेट था. किशोर के मुख पर उभरा उल्लास अशोक से छिपा नहीं रहा. वह पीले कागज में लिपटा उपहार लेकर आते मनीष को देखकर अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराया, जिसका उत्तर मनीष ने भी उसी पैटर्न की मुस्कान से दिया.

दोनों ने मुस्कराकर किशोर को शुभ कामनाएं दीं—"जन्म-दिन शुभ हो! तुम चिरंजीवी हो! तुम्हारे हर जन्म-दिवस पर हम तुम्हारे सामने हों!"

किशोर प्रसन्नता से फूल उठा—"शुभ कामनाओं के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद. तुम लोगों का हजार बार स्वागत है. अपने जन्म-दिवस पर स्वयं को तुम लोगों के बीच पाकर मुझे सदैव प्रसन्नता होगी."

अशोक मन ही मन बड़बड़ाया—'साले को थोड़ा-सा सम्मान क्या दिया, स्वयं को वी.आई.पी. मान बैठा!'

इससे पूर्व कि किशोर अशोक की मुख-मुद्रा को पढ़ पाता, उसकी दृष्टि उपहार के पैकेट लेकर आते विशाल एवं राजीव पर ठहर गई. उसने आगे बढ़कर एयर इंडिया के महाराजा-सा झुककर उनका गरम-स्वागत किया—"आइए, पधारिए. . . वह आएं घर में हमारे खुदा की कुदरत है; कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं!"

अपने इस अभूतपूर्व स्वागत पर विशाल एवं राजीव मन ही मन मुस्कराए. उन्होंने अपने उपहार सामने के टेबिल पर रख दिए और रूमाल से अपना माथा यों पोंछने लगे जैसे भारी-भरकम उपहार को किशोर के घर लाते-लाते पसीने में सराबोर हो गए हों और उनको यों पसीना पोंछते देख किशोर कोका-कोला की बोतल आगे कर देगा.

"आज तो, प्यारेलाल, लट्टू हो रहे हो लट्टू!" विशाल ने कहा.

किशोर ने प्रश्नसूचक दृष्टि से विशाल को देखा.

"सीधी-सी तो बात है, यार! तुम हजार वाट के लट्टू से चमक रहे हो, पार्टी में अकेले दमक रहे हो." विशाल ने स्वयं को स्पष्ट किया.

"बात यह है कि मुंह पर शायद पाउडर कुछ अधिक लग गया," किशोर ने कुछ-कुछ समझते हुए कहा.

अब तक आलोक और सुमीत भी आ गए थे, अपने-अपने उपहारों के साथ.

"विशाल, तुम्हें याद है न? शायद न हो, किंतु मुझे तुम्हारी बात याद है."

इससे पूर्व कि विशाल कुछ समझ पाता, किशोर ने सबको संबोधित करते हुए कहा—"विशाल का कहना था कि हमारी पार्टियां अंग्रेजियत में रंगी होती हैं. विशाल की बात को आदर देते हुए मैंने इस पार्टी को भारतीय रंग देने का प्रयास किया है. यह विशाल के सुझाव का ही परिणाम है कि आपको इस पार्टी में मिस्टर केक और मिस मोमबत्ती के दर्शन नहीं हो रहे!"

भीतर आकर किशोर एक थाली उठा लाया. थाली में एक दीपक जल रहा था सफेद बताशों में घिरा हुआ.

"मोमबत्ती का स्थान लिया है दीपक ने और केक के स्थान पर बताशे शोभायमान हैं. आशा है आप सब इस परिवर्तन का स्वागत करेंगे," कहते हुए किशोर ने सब साथियों पर दृष्टि डाली—"पार्टियां आपने बहुत देखी हैं किंतु यह अपने ढंग की एक ही पार्टी है. क्या यह पार्टी एक सुखद आश्चर्य का विषय नहीं?"

दीपक को बुझाकर बताशों की थाली किशोर ने मित्रों की ओर बढ़ा दी.

"सुखद आश्चर्य तुम्हें भी होगा, मित्र, किंतु कुछ प्रतीक्षा के अनंतर!" विशाल ने थाली से एक बताशा उठाकर मुंह में घोलते हुए कहा.

"तब तक तुम हमें और सुखद आश्चर्य दे सकते हो!" अशोक ने शरारत से कहा.

किशोर ने चकित भाव से अशोक को देखा, विशाल को देखा. दोनों के मुखों पर शरारत की रेखाएं खिंची थीं. शेष लोग मन ही मन मुस्करा रहे थे.

अब मेज पर जलपान की प्लेटें लग रही थीं. लगाने वाला था किशोर का छोटा भाई गिरीश. प्लेटों में वह सब आडंबरपूर्ण मिठाइयां नहीं थीं जिनकी कल्पना अशोक, विशाल आदि ने की थी. रसगुल्ला तो दूर, प्लेटों में उसका रस तक नहीं था. प्लेटों में थी एक-एक जलेबी, एक-एक आलू का परांठा और पुदीने की हरी-हरी चटनी और प्लेटों के साथ था पानी का एक-एक गिलास.

यह राजीव व सुमीत की आशाओं के अनुकूल नहीं था, किंतु वे इस स्थिति का सामना करने के लिए तैयार थे.

"साथियो, प्रतीक्षा की घड़ियां समाप्त! अब आपके सामने एक-एक करके अनेक सुखद आश्चर्य आंखें खोलेंगे!" विशाल ने कहा.

"आश्चर्य नहीं, सहकारिता से वह सब सामग्री आज हम अपने किशोर-समाज को देंगे जिसके लिए प्रायः उसके मुंह में पानी आता है!"

"नित्य रसगुल्ला खाने की मांग कौन करता है..." राजीव ने चीखकर कहा.

"महीने में एक बार तो मिले!" अशोक बोला.

"चार न सही एक तो मिले!" विशाल ने उत्तर दिया.

"और यही समाजवाद है!" सुमीत चहचहाया.

"और इस समाजवाद को हमने प्राप्त कर लिया है. आप प्रमाण मांगेंगे. ये रहे प्रमाण..." अशोक ने उत्साहित भाव से अपने उपहार का पैकेट उठाकर कहा. सबने तालियां बजाकर अशोक के उत्साह का स्वागत किया.

उसने बड़े नाटकीय ढंग से पैकेट खोला. पैकेट में एक बड़ा-सा कुल्हड़ था, जिसमें धवलोज्ज्वल रसीले रसगुल्ले हंसों के समान तैर रहे थे. कुल्हड़ से एक कागज लटक रहा था—'आ रसगुल्ले आ, सीधा मेरे मुंह में चला आ! कबसे किशोर और हम सब तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं!' मनीष ने आगे बढ़कर एक-एक रसगुल्ला सबकी प्लेटों में रख दिया.

अब विशाल ने अपने उपहार का पैकेट खोला. उसमें रसमलाई का कुल्हड़ था, जिसपर लिखा था—'रसमलाई, जो किसी भी पार्टी की आत्मा है!' सुमीत ने आगे बढ़कर एक-एक रसमलाई सबकी प्लेटों में रख दी.

एक नारा लगा—"समाजवाद!"

"जिंदाबाद!" सबने जोश में भरकर कहा.

पैकेट खुल रहे थे और प्लेटों में समाजवाद भरा जा रहा था, उनकी शोभा में अभिवृद्धि हो रही थी और पार्टी में उपस्थित सदस्यों की आंखों की चमक में श्रीवृद्धि हो रही थी.

एक पैकेट जलपान के पश्चात् खुला. उसमें स्याही की शीशी थी और थी एक चिट—'स्याही, जो प्रायः किशोर के पैन में नहीं होती!'

"यह बड़े महत्त्व का समाजवादी आइटम है!" अशोक ने कहा.

"इससे हमारे विद्यार्थी समाज के एक सदस्य की न्यूनतम आवश्यकताओं में से एक की पूर्ति हो गई है," विशाल ने कहा, "और यही इस पार्टी की उपलब्धि है."

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच पुनः नारा गूंजा—"समाजवाद जिंदाबाद!"

"किशोर को धन्यवाद, जिसने हमें समाजवाद लाने की प्रेरणा दी!" अशोक ने अंत में कहा. ●

सी-बी 2, सेक्टर 3, पो. ध्रुवा, रांची.

आपके पत्रों से-

0 अगस्त का 'पराग' मैंने और 'क्लब' के किशोरों ने पढ़ा. ... सब की एकमत राय है कि 'पराग' के समान इस समय कोई पत्रिका नहीं है, अर्थात् किशोर-पाठकों के लिए 'पराग' इस समय सर्वोच्च पत्रिका है. . . .'पराग' के नए स्तंभ भी पसंद किए गए. 'पुराणमल नवकुमार' कार्टून-कथा मजेदार है. हमें राजेश खन्ना से एक भेंट-वार्ता बहुत पसंद आई. 'किशोर-जीवन का एक आकलन' अत्यधिक पसंद आया. कहानियां भी मनोरंजक थीं.... क्या आप एक अच्छा किशोरोपयोगी धारावाहिक उपन्यास भविष्य में प्रकाशित करेंगे?—क्लब के किशोरों का प्रश्न है. 'पराग' को अपने साथी के रूप में पाकर क्लब के सदस्य प्रसन्न हैं. उन्हें इस बात का गर्व है कि 'पराग' उनकी प्रतिनिधि पत्रिका है. हम सब किशोरों की तरफ से बधाई! —किशनकुमार भूलानी, अध्यक्ष, किशोर संगम क्लब, भोपाल

[उपयुक्त उपन्यास हाथ लगने पर अवश्य प्रकाशित होगा—सं.]

0 'पराग' का परिवर्तित रूप बहुत अच्छा लगा...वास्तव में किशोरों के लिए हिंदी में एक अलग पत्रिका की जरूरत थी. हम किशोर 'टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन' के प्रबंधकों और उन्हें इस तरह की पत्रिका प्रकाशित करने की सलाह देने वालों के हृदय से आभारी हैं. . . नए 'पराग' में प्रकाशित रचनाओं को देखने से लगा कि 'पराग' का संपादक-मंडल किशोर-मनोविज्ञान को खूब समझता है और उनकी रुचि तथा आवश्यकता के अनुसार पाठ्य-सामग्री देने में तत्पर है. डा. देवेश ठाकुर का लेख, जासूसी उपन्यासों पर आयोजित परिचर्चा और इन सब से अधिक 'राजेश खन्ना' पर लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं. कहानियों में 'खिलाड़ी और खिलाड़ी', 'चैम्पियन' तथा 'वह लड़की' वास्तविक जीवन के बहुत निकट लगती हैं और मन पर गहरा असर छोड़ने के साथ-साथ कुछ सिखाती भी हैं. . . .बस, छाया चित्रों की कमी महसूस हुई. —अरविंद शर्मा, इलाहाबाद

0 अगस्त का 'पराग' पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई. 'नगर-नगर में घूमता आईना' व 'पुराणमल-नवकुमार' स्तंभ बहुत ही रोचक लगे. —अशोककुमार जालान, मिर्जापुर

0 'पराग' चूंकि किशोरों के लिए हो गया, इसलिए इसका 'कैनवस' काफी बड़ा हो गया. अब हमें कहने-सुनने के लिए काफी कुछ है. अगस्त अंक में जिस प्रकार महानगर (बम्बई) को देवेश ठाकुर ने रखा, और दूसरी ओर 'बंगला देश के लड़ाके किशोर' (लेख) के अंतर्गत सामग्री दी गई, वह प्रशंसनीय है. —आर्यरत्न व्यास, इलाहाबाद

0 'पराग' का नया निखार बेहद पसंद आया. इतने कम पैसों में इतना अच्छा साहित्य मिलना पूर्णतः असंभव है. किशोरों के लिए सभी कहानियां उपयोगी रहीं. कार्टून-कथा 'पुराणमल-नवकुमार', और 'वर्जित फल' स्तंभ में मनहर चौहान की विचारधारा अच्छी रही. इतने अच्छे 'पराग' के रूप के लिए आप बधाई के पात्र हैं. —सत्य जैसवाल, मथुरा

0 अभी 'पराग' का नया अंक मिला. पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि 'पराग' को किशोर बना दिया गया है. राजेश खन्ना से भेंट-वार्ता बहुत पसंद आई. ऐसी भेंट-वार्ता हर अंक में दिया करें....आपने किशोरों के लिए चित्र बहुत बेकार दिए हैं. —सुभाषकुमार जैन, जयपुर

0 मुझे अगस्त अंक की सभी कहानियां, कविताएं, लेख, फिल्मी-कोना, कार्टून-कथा तथा सभी स्थायी स्तंभ बेहद पसंद आए. पचास पैसे में इतनी विपुल सामग्री अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती. इस नए अंक का आकार, रंग-रूप, साज-सज्जा एवं छपाई बहुत ही आकर्षक है. —विजयकुमार रिंगे, भोपाल

0 'पराग' का अगस्त अंक देखा. वास्तव में किशोरों की समस्याओं, आकांक्षाओं, कुंठाओं, आशाओं और निराशाओं को स्वर देने वाले पत्र की बहुत जरूरत थी. आशा है, 'पराग' नई पीढ़ी का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर सकेगा. —विनोद रस्तोगी, इलाहाबाद

0 'पराग' का अगस्त, 1971 का अंक देखकर वास्तव में प्रसन्नता हुई. . . .मैं 'पराग' का काफी पुराना नियमित पाठक था, पर उम्र के साथ साथ इससे लगाव कम हुआ. लेकिन आज, जब अगस्त '71 का अंक, जिसका पहले विज्ञापन भी 'समाचार पत्रों' में देखा था, खरीदा तो प्रसन्नता की सीमा न रही, क्योंकि मेरी उम्र इस समय 19 वर्ष की है. —कमलकुमार जोशी, अल्मोड़ा

www.kissekahani.com

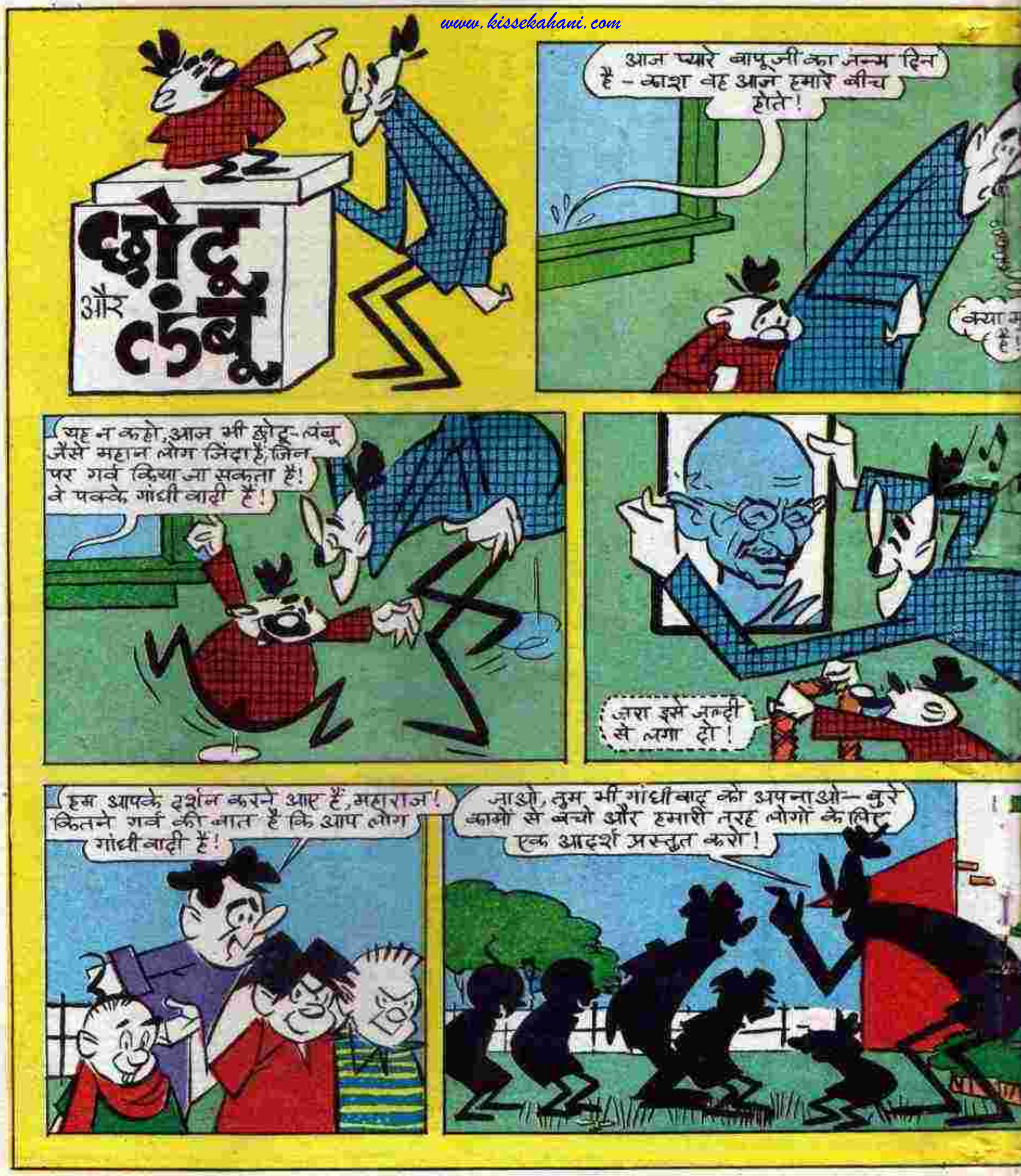

क्या मुसीबत है!
अगर बापूजी संसार मे नहीं हैं तो क्या हुआ, उनके महान कार्य तो जिंदा हैं!
ये लोग जल्दी टलें तो कुछ काम बने!
किंतु बापूजी के कहे पर कौन चलता है – आज तो सभी भ्रष्टाचार की चादर ओढ़े हैं!
?
?
काश, वे महान व्यक्ति घर पर हों कि हम उनके दर्शन कर सकें!
आ हा! क्या बात है बालको?
तब तो हमें आशा है कि आप भारत टाकीज़ का टिकट हमें असल्य भाव से दे देंगे, और साबित कर देंगे कि आप लोग टिकटों की काला-बाज़ारी नहीं करते!
ओह... अररर! ठीक है!
और फिर...
छोटू-लंबू,
जिंदाबाद!
लुट गए!
मर गए!

www.kissekahani.com

यह परिचर्चा क्यों?

यह प्रश्न उतना नया नहीं है, जितना दिखाई देता है. छुटपुट—और किसी कदर पुराणपंथी—विचार इस बारे में यत्र-तत्र प्रकट किए जाते रहे हैं कि अपराध साहित्य पढ़कर 'बच्चों' के दिमाग बिगड़ते हैं, और वे स्वयं अपराध की ओर उन्मुख होते हैं. हमें इसपर 'बच्चों' के दृष्टिकोण से नहीं, बड़ों के दृष्टिकोण से भी नहीं, मात्र किशोर-किशोरियों के दृष्टिकोण से विचार करना है. इस दृष्टि से निम्न प्रश्न उठते हैं—

1. क्या स्वयं जासूसी साहित्य की विधा को ही गर्हित मान लिया जाए?—या व्यक्ति के चरित्र के बौद्धिक निर्माण में उसकी कोई विशिष्ट उपादेयता है?—क्या अपराध-साहित्य का पठन-पाठन हम किशोरों की दृष्टि से एक 'आवश्यक बुराई' के रूप में स्वीकार करें.
2. क्या हम किशोरों के सामने एक 'वर्जित फल' लटका कर उसे चखने से मना करने का बाइबिली ढंग अपनाएं?—या उन्हें उस की अच्छाई-बुराई समझाते हुए, एक ओर उस वर्जित फल को सही तौर से उगाने की कोशिश करें, तो दूसरी ओर उसकी दिग्भ्रम करने वाली प्रवृत्ति की ओर से किशोरों को सचेत करें.
3. क्या अत्यधिक रोमांस, विकृत रोमांस, अनुचित वासना का आरोप केवल जासूसी उपन्यासों पर ही लादा जा सकता है, या भारतीय भाषाओं का तथाकथित 'उच्च साहित्यक कथाकार' इन प्रवृत्तियों की ओर जासूसी उपन्यास-लेखकों से भी अधिक उन्मुख है? या फिर 'उच्च-स्तरीय' साहित्य भी किशोरों के लिए वर्जित माना जाए?
4. इस अवस्था में क्या किशोरों के लिए अलग तरह के जासूसी उपन्यास रचने-रचाने की ओर भी ध्यान दिया जाए?—यदि हां, तो क्या हिंदी में—और अन्य भारतीय भाषाओं में भी—इस प्रकार की उपन्यास-रचना की ओर ध्यान दिया जा रहा है?

पिछले दो अंकों में आप क्रमशः सर्वश्री मनहर चौहान व कुणाल श्रीवास्तव के विचार पढ़ चुके हैं. लीजिए, इस अंक में प्रस्तुत है डा. कैलाश नारद और श्री शाहिद अब्बास अब्बासी. संपादकीय विचार आप अगले अंक की समापन किस्त में देखिए.

—संपादक

'वर्जित फल' (स्थायी स्तंभ)

'पराग' के लिए प्रस्तावित एक परिचर्चा

जिस सामाजिक परिवेश में कच्ची और दाहक आग लिये किशोर और किशोरियां उग रहे हैं, उसी माहौल का एक सुलगता हुआ चेहरा भौंडी और कुरुचिपूर्ण फिल्में भी हैं. लेकिन सवाल जासूसी उपन्यासों के बारे में उठाया जा रहा है, जो कि रोमांच और कौतूहल का एक हिस्सा है. किशोर पीढ़ी की दिशाहीनता का दोष—यदि वह है, तो स्वयं हमारे राजनीतिज्ञों की दिशाहीनता के मुकाबले कुछ भी नहीं है—बड़ी बेशर्मी के साथ जासूसी उपन्यासों पर थोप दिया जाता है, बगैर यह जाने कि जिस सामाजिक व्यवस्था में किशोरों को जिंदा रहने के लिए विवश किया जा रहा है, उस व्यवस्था के जिम्मेदार हमारे शासक, उनकी जिज्ञासा और कौतूहल की पूर्ति के लिए उन्हें कैसा साहित्य मुहैया कर रहे हैं! किशोर पीढ़ी को चूंकि अपने भीतर की तपिश को बुझाने के लिए सही साहित्य नहीं मिलता, वह है ही नहीं, तो वे उन किताबी चीथड़ों तक को हाथ में ले लेते हैं जो उन्हें कुछ क्षणों के लिए उस मायावी दुनिया में ले जाते हैं, जो इस धरती पर कहीं भी नहीं है! कला के माध्यम से पलायन की इच्छा किस के भीतर नहीं जागती? दिमागी गुलामी से भरे इस देश में दुर्भाग्यवश जिस रोमांचक साहित्य को व्यक्तित्व के बनने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए था, वहां उसे जिस निर्ममता से ठुकराया गया है, इसे वे साहित्यकार और राजनेता नहीं जानते, जिनके लिए नैतिकता का कीर्तन करना उनके रोजमर्रा के पाखंड का एक हिस्सा बन गया है.

अंग्रेजी के प्रख्यात साहित्यकार जान गाल्सवर्दी ने अपनी किसी कहानी, संभवतः 'द सिनेरियो' में ही तो लिखा है कि विकृत और अश्लील युग की कला भी उतनी ही भौंडी और अश्लील होगी. फिर चारित्रिक पतन के लिए जासूसी साहित्य को ही बदनाम क्यों किया जाता है. योरुप के व अन्य पश्चिमी देशों में, जहां बौद्धिक चेतना हमारे बौद्धिक परिवेश से कहीं अधिक विकसित और चेतन है, यह स्वीकृत मान्यता है कि नई पीढ़ी की दिशाहीनता के लिए दोषी दूसरे अन्य कारण हो सकते हैं, लेकिन उनको गुमराह करने में जासूसी साहित्य कदापि सहायक नहीं है. अर्ल स्टैनली गार्डनर के अमर पात्र पैरीमेसन, सैक्स्टन ब्लेक, और आर्थर कॉनन डायल के शरलाक होम्स से बौद्धिक आवेश को ही गति मिली है. जब इन पात्रों ने बड़ी ही कुशलता से अपराध की दुनिया के सूरमाओं को अपने चिंतन से परास्त कर दिया, तो दुनिया का प्रत्येक पाठक दिमागी पेचीदगियों का शिकार हुआ है. लेकिन पश्चिमी साहित्य में इस तरह के रोमांचक साहित्य को पढ़ना कदापि 'बुरी लत' नहीं समझा गया. जान कैनेडी और विंस्टन चर्चिल ने अर्ल स्टैनली गार्डनर को अपने सबसे प्रिय उपन्यासकारों में केवल इसी लिए गिनाया था कि उसके पात्रों ने दोनों राजनेताओं को मानसिक विपत्तियों के क्षणों में शांति पहुंचाई थी.

बचपन और यौवन के संधिकाल से गुजरते किशोर और किशोरी को जिस देश में कच्ची बुद्धि का माना जाता है, वहां उससे यह उम्मीद करना हास्यास्पद है कि वह प्रत्येक कार्य गंभीरतापूर्वक ही करेगा. किशोर को संवेदना और सहानुभूति की आवश्यकता होती है लेकिन संस्कृति और परम्परा के नाम पर उसे 'नहीं' की जिन बेड़ियों से जकड़ दिया जाता है, वे उसे जीवन भर दिमागी तौर पर दब्बू बना देती हैं. हजारों साल से चली आ रही वर्जनाएं ही क्या कम हैं, जो आज के भारतीय किशोर के लिए नए सिरे से घेरेबंदी की जा रही है. साफ बात तो यह है कि जासूसी साहित्य कोई ऐसा वर्जित फल नहीं है कि जिसे बड़े भौंडेपन से नकार दिया जाए.

सवाल जासूसी साहित्य के अच्छा या बुरा होने का नहीं है, अच्छा जासूसी साहित्य लिखे जाने का है. जिन बड़े लेखकों ने बहुत बड़े पैमाने पर साहित्य को पैसा कमाने का धंधा बना रखा है, और जो

जासूसी उपन्यास किशोर-पाठकों के चरित्र-निर्माण में बाधक हैं?

पैसा कमाने के लिए साहित्य में किसी भी प्रकार का अच्छा या बुरा समझौता करने से भी नहीं हिचकते, वे जासूसी साहित्य को केवल इसी लिए बुरा और अछूत कहते हैं कि वे कोशिशों के बावजूद भी आज तक एक अच्छी जासूसी कहानी नहीं लिख पाए. वे अपने मन की विरूपता द्वारा, लेखन के माध्यम से, पाठक के भीतर की तमाम सोती हुई भावनाओं को उभार सकते हैं, उसके भीतर की गंदगी को गुदगुदा सकते हैं, किंतु एक सही जासूसी कहानी नहीं लिख सकते. अच्छा जासूसी साहित्य हमेशा से हिंदी में चुनौती रहा है. चंदर, ओमप्रकाश शर्मा और कर्नल रंजीत जैसे कुछेक उंगलियों पर लिये जाने लायक जो नाम हैं भी, वे भले ही काफी तेजी से इस रीतेपन को भर रहे हों, लेकिन इस दिशा में और भी बड़े प्रयासों की जरूरत है.

जासूसी साहित्य को गर्हित समझने वाले 'गंभीर' लेखक यदि साहसिक कारनामों से भरे 'स्पाई साहित्य' लिखने की ओर प्रवृत्त हों, तो वह निश्चय ही शुभ-लक्षण होगा. कमलेश्वर ने 'सारिका' के माध्यम से इस तरह के प्रयासों की शुरुआत की थी, 'चंदर' के उपन्यास 'नीले फीते का जहर' को ले कर, किंतु उन्हें फिर अच्छी कहानियां ही नहीं मिल पाईं. एक अच्छे संपादक की भी कैसी-कैसी मजबूरियां होती हैं, यह इससे भली-भांति समझा जा सकता है. विश्वविख्यात फिल्मकार सत्यजित राय को, जो एक अच्छे कथाकार के रूप में भी बंगला में जाने जाते हैं, रोमांचक साहित्य लिखने से कभी परहेज नहीं रहा. स्तब्ध कर देने वाले, खून जमा देने वाले 'सस्पेंस' से भरी हुई उनकी 'अनाथ बाबू का भय' को जिसने पढ़ा है, वही जानता है कि सत्यजित राय कितनी डरावनी कहानियां लिख सकते हैं! वह ही अकेले क्यों, शरदेंदु बंद्योपाध्याय, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, प्रणव राय और गजेंद्र कुमार मित्र जैसे बंगला के प्रथम श्रेणी के कथाकारों की कृतियां इस दिशा में कम नहीं हैं, किंतु बंगला भाषा में इन साहित्यकारों को जासूसी कहानियां लिखने के लिए कभी द्वितीय श्रेणी का नहीं समझा गया. हिंदी की पुरानी पीढ़ी के शिरमौर उपन्यासकार बाबू देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकांता संतति' और 'भूतनाथ' के रोमांच को चखने के लिए न जाने कितने हिंदी न जानने वाले पाठकों ने हिंदी सीखी थी.

मेरे जाने, जासूसी साहित्य से कतराने वाला हिंदी लेखक, पाठक की अपेक्षा उसे अपने लिए कहीं अधिक 'वर्जित फल' मानता है. उसे डर है कि वह उसके पढ़ने या लिखने से बिगड़ जाएगा. छुई-मुई हो जाने वाली एक किस्म की संजीदगी यह भी होती है. पाठक की स्थिति तो थोड़ी-बहुत समझ में भी आती है, लेकिन उन लेखकों के लिए क्या कहा जाए, जो सत्साहित्य का ढोंग रचते हैं और जिन्हें आज तक यह समझ में नहीं आया कि रचना के विभिन्न स्तर पाठकों के लिहाज से भी अलग-अलग होते हैं.

जासूसी साहित्य, अच्छा और वह भी पठनीय, यदि प्रचुर मात्रा में रचा जाए तो संस्कारवादी साहित्यिकों द्वारा फैलाया गया कुहासा छंट सकता है. उसे यदि सहकारी प्रकाशन के आधार पर प्रकाशित कराया जाए, तो प्रकाशकों द्वारा होने वाले बेहिसाब शोषण से भी मुक्ति मिल सकती है. अन्यथा, यदि इस दिशा में अच्छे और ईमानदार प्रकाशक आगे आ सकें, तो और भी अच्छा हो.

साफ-साफ कहूं तो मुझे खुद जासूसी उपन्यास पढ़े बिना नींद नहीं आती—आप चाहें तो बड़े शौक से मुझे अपरिपक्व बुद्धि वाला पाठक कह सकते हैं जो किशोर मति से आज तक मुक्त नहीं हो पाया!

हुकुमचंद नारद रोड, जबलपुर

(डॉ.) कैलाश नारद

क्या जासूसी उपन्यास किशोर पाठकों के चरित्र निर्माण में बाधक हैं ? इस सवाल के समांतर मुझे एक और सवाल उभरता हुआ दिखाई देता है : क्या औसत मन:स्थिति के किशोर पाठक पर जासूसी उपन्यास कोई स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं?

इस दूसरे सवाल का जवाब मैं तलाशना चाहता हूं.

करीब नौ साल की उम्र में मैंने पहला जासूसी उपन्यास पढ़ा था. छुट्टियों के दिन थे. कोई हिंदी पत्रिका पास में थी नहीं और मैं मां के सामने बैठा झींक रहा था.

आखिर में मां ने हाथ की उर्दू पत्रिका पटकी, 'उहं हूं' की लंबी सांस भरी और संदूक में से रंग-बिरंगे कवर वाली एक किताब निकाल कर मुझे थमा दी.

वह 'जासूसी दुनिया' के उर्दू संस्करणों में से एक थी. मातृभाषा उर्दू होने के बावजूद मेरा हिंदी से ज्यादा लगाव था और उर्दू पढ़ने का मुझे अभ्यास नहीं था. इसलिए मैंने निहायत मजबूरी में वह किताब शुरू की.

मेरी रफ्तार धीमी थी. भाषा की दिक्कत और बहुत कच्ची मानसिकता की वजह से मुझे कई संवाद और 'एक्शन' समझ में नहीं आ रहे थे. फिर भी उस किताब में कुछ था जिस ने मुझे बांधे रखा और लगातार पढ़कर मैंने वह किताब खत्म की.

फिर मां ने संदूक में रखी शेष आठों किताबें निकलवाईं और उन्हें चाट गया.

उन किताबों में मेरे लिए क्या था? एक अब तक के लिए अनजाना रहस्यमय माहौल, तेज घटनाक्रम और सारी मुश्किलों के बीच से सीना ताने निकलते हुए जासूसों का हीरोपना.

(शेष पृष्ठ 47 पर)

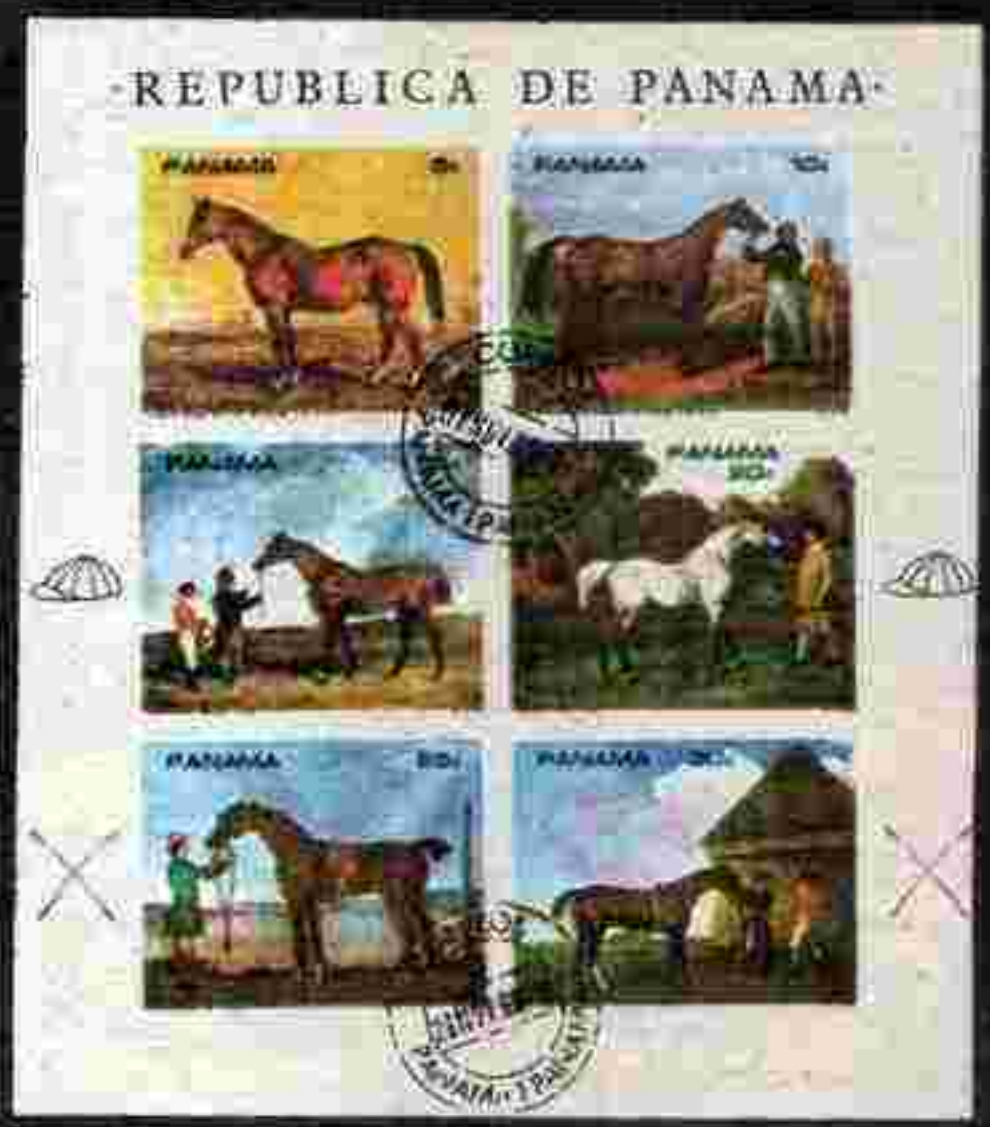

1

2

3

लघु-टिकट पत्री

(मिनियेचर शीट)

• गजराज जैन

डाकखाने से टिकट खरीदते समय आपने उन शीटों की एक झलक अवश्य देखी होगी, जिनसे फाड़कर डाक बाबू हमें आवश्यकतानुसार टिकट देता है. ये शीटें काफ़ी बड़ी होती हैं, जिनमें दो सौ, ढाई सौ तक टिकट हो सकते हैं.

एक शीट में कितने टिकट हों, यह उस देश की मुद्रा-प्रणाली पर भी निर्भर करता है. दशमलव मुद्रा-प्रणाली वाले देशों में प्रति शीट टिकटों की संख्या 100 या इसके गुणकों में होगी. जब कि पौंड-शिलिंग-पैंस की मुद्रा वाले देशों में 240 टिकट प्रति शीट होंगे. जब हमारे यहाँ रुपये-आने-पैसों का प्रचलन था तब प्रति शीट टिकटों की संख्या कीमत के अनुसार इस प्रकार रखी जाती थी कि उनका मूल्य पूरे रुपयों में आए. उदाहरणार्थ स्वतंत्र भारत के पहले तीन टिकटों का मूल्य क्रमशः 1½ आना, 3½ आना और 12 आना था और प्रति शीट इनकी संख्या 144, 96 और 160 थी. किसी शीट का मूल्य पूरे रुपयों, पौंडों या डालरों में आए इस बात का ध्यान रखने से टिकटों का हिसाब-किताब रखने में सुविधा होती है और बिक्री के समय भूल-चूक नहीं हो पाती.

आम जनता को बेचे जाने वाले टिकटों की इन बड़ी शीटों के अलावा डाक-तार विभाग संग्रहकर्ताओं के लिए टिकटों की छोटी शीटें भी जारी करता है, जिसे संग्राहक मिनियेचर शीट (लघु-टिकट-पत्री) अथवा सोविनियर शीट (स्मारक-टिकट-पत्री) के नाम से जानते हैं. बड़ी शीटों की तुलना में ये छोटी शीटें अधिक सुंदर और कलात्मक होती हैं.

सामान्यतः बड़ी शीट में प्रायः एक ही प्रकार के टिकट होते हैं, परंतु स्मारक-टिकट-पत्री में अवसर विशेष पर जारी किए गए सभी टिकट एक साथ होते हैं. उदाहरणार्थ मारिशस द्वारा प्रकाशित विशेष गांधी स्मारक टिकटों को लें, जिन्हें आपने मार्च '70 के 'पराग' में देखा होगा. वैसे इनमें से प्रत्येक टिकट अलग-अलग शीटों में छापा गया और बेचा गया, परंतु संग्रहकर्ताओं के लिए इन छहों टिकट की एक सुंदर स्मारक शीट छापी गई, जिसके किनारों पर भारत का राष्ट्रचिन्ह अशोक स्तंभ, चतुर्भुज विष्णु, पानी लाती हुई स्त्री, चर्खा चलाता व्यक्ति, सँपेरा, बैलगाड़ी, झोंपड़ी, गाय आदि भारतीय संस्कृति से संबंधित वस्तुओं के चित्र अंकित हैं.

आपके अवलोकनार्थ ऐसी ही एक अन्य सुंदर मिनियेचर शीट प्रस्तुत की जा रही है, जो मध्य अमरीकी देश पनामा द्वारा 28 नवंबर 1968 को जारी की गई थी (चित्र सं. 1). इसपर अमरीकी घुड़दौड़ में भाग लेने वाले छह प्रसिद्ध घोड़ों के चित्र अंकित हैं. ये चित्र राष्ट्रीय घुड़दौड़ संग्रहालय, न्यूयार्क में सुरक्षित हैं. 5, 10, 15, 20, 25 और 30 सेंट मूल्य के इन टिकटों पर क्रमशः लेग्जिंगटन, अमेरिकन एक्लिप्स, प्लेनीपोटेन्सियरी, जिम क्रेक, फ्लाईंग चाइल्डर्स और एक्लिप्स नामक घोड़ों के चित्र अंकित हैं. इसके किनारों पर घुड़सवारी से संबंधित वस्तुओं—घोड़े की नाल, जॉकी की टोपी, बेंत के चित्र हैं.

दूसरे प्रकार की मिनियेचर शीटें वस्तुतः बड़ी शीटों का लघु रूप होती हैं, जिनमें एक ही प्रकार के चार-छह टिकट होते हैं, परंतु संग्रहकर्ताओं के आकर्षण के लिए उन्हें कलात्मक ढंग से सजाया जाता है. उदाहरण के लिए संलग्न दूसरी शीट को देखिए (चित्र सं. 2), जिसे पोलैंड द्वारा गत वर्ष 28 अगस्त को जारी किया गया था. यह शीट उन छह शीटों में से एक है जिन्हें पोलैंड ने अपने महान कलाकारों की स्मृति में जारी किया था. इनमें से प्रत्येक में छह टिकटों का स्थान है, परंतु उनपर वस्तुतः चार टिकट ही अंकित किए गए हैं. शेष दो टिकटों के स्थान में टिकटों का परिचय दिया गया है. प्रस्तुत शीट में कलाकार जेन मेटेज्को का स्वनिर्मित चित्र अंकित है.

प्रायः किसी विशेष अवसर पर एक ही टिकट निकाला जाता है तब उसे ही विशेष सजावट के साथ लघु-पत्री के रूप में बेचा जाता है. जैसे 1969 में चंद्रमा पर पहुंचने वाले तीन अंतरिक्ष यात्रियों—नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एलड्रिन तथा माइकेल कॉलिंस के सम्मान में यमन ने जो विशेष टिकट निकाला, उसके साथ अंतरिक्ष, चंद्र-धरातल व चंद्रयान के चित्र जोड़कर उसे एक सुंदर लघु-पत्री (चित्र सं. 3) का रूप दे दिया गया था.

प्रति मास नए पुरस्कार

इस अंक की कहानियां ध्यान से पढ़ें और हमें 20 अक्तूबर 1971 तक लिखें कि अपनी पसंद के विचार से कौन-कौनसी कहानी आप पहले, दूसरे और तीसरे आदि नंबरों पर रखेंगे. आपको इस प्रकार उन सभी कहानियों पर अपनी पसंद बतानी है, जिनका उल्लेख 'कहो-क्या' में 'सरस कहानियां' के अंतर्गत आया है. जिन पाठकों की पसंद का क्रम बहुमत से अधिकतम मेल खाता हुआ निकलेगा, उन्हें हम श्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार में भेजेंगे.

किशोर पाठकों द्वारा इस प्रकार इस अंक की प्रथम स्थान पर चुनी गई कहानियों में से जिस कहानी को सर्वाधिक मत प्राप्त होंगे, उसके लेखक को भी 50 रुपये का एक अतिरिक्त पुरस्कार प्रदान किया जाएगा. अपनी पसंद एकदम अलग कार्ड पर लिखें; पता यह लिखें :

संपादक, 'पराग', (हमारी पसंद प्रतियोगिता नं. 56), 10, दरियागंज, दिल्ली-6.

प्रतियोगिता नं. 53 (जुलाई 71) का परिणाम

इस प्रतियोगिता में कुल चार पाठकों का हल पूर्णतः सही आया. उनके नाम और पते नीचे दिए जा रहे हैं; शीघ्र ही उन्हें पुरस्कार भेजे जाएंगे :

- **अनिल जोशी, सुपुत्र श्री दयाकिशन जोशी, 15/9, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-6.**
- **संजयकुमार, सुपुत्र श्री नरेशप्रसाद सिन्हा, द्वारा श्री रमाशंकर सक्सेना, 68, खजुहा, लखनऊ-4.**
- **रवि सालोमन, द्वारा श्री पी. डी. सिंग, इर्विन हास्पिटल, अमरावती (महाराष्ट्र).**
- **सुशीलकुमार सचान, द्वारा श्री उदयनारायण सचान, नायब तहसीलदार, तहसील रामपुर सदर, जिला रायपुर (उ. प्र.).**

किशोर पाठकों द्वारा जुलाई 1971 की प्रथम स्थान पर चुनी गई कहानियों का मतसंख्यानुसार क्रम इस प्रकार है :

1—आत्मा की आवाज, 2—पहला पपीता, 3—सूरदास, 4—चोर, 5—बयान, 6—दादी की घड़ी, 7—पतंग और पढ़ाई.

हमें प्रसन्नता है कि प्रथम चुनी गई कहानी 'आत्मा की आवाज' के लेखक श्री हसनलाल छीपा को इस प्रतियोगिता क्रम में प्रथम बार 50 रुपये का अतिरिक्त श्रेष्ठता-पुरस्कार दिया जा रहा है. लेखक 'पराग' परिवार की ओर से बधाई लें.

इन मिनियेचर शीटों पर सजावट के अतिरिक्त कभी-कभी क्रमसंख्या व विशेष डाक-मुहर भी लगी होती है. छिद्रदार लघु-पत्रियों के साथ कुछ छिद्र-विहीन लघु-पत्रियाँ भी जारी की जाती हैं, जो काफी महंगी बिकती हैं. विगत कुछ वर्षों में भूटान ने अपने त्रि-आयामीय रेशमी व स्टील के टिकटों की बहुत सुंदर, आकर्षक व आश्चर्यजनक मिनियेचर शीटें बेचकर काफी विदेशी मुद्रा अर्जित की है. संसार में मिनियेचर शीटें निकालने वाले देशों में अल्बानिया, बेलजियम, भूटान, ब्राजील, कोलम्बिया, क्यूबा, जर्मनी, हंगरी, जापान, कोरिया, लाइबेरिया, न्यूजीलैंड, पनामा, पोलैंड, रूमानिया, रूस, शारजाह, स्वीट्जरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, यमन व कतिपय अफ्रीकी देश प्रमुख हैं. अकेले यमन ने 1960 से अब तक सौ से अधिक मिनियेचर शीट निकालकर विश्व रेकार्ड स्थापित किया है.

भारतीय डाक-तार विभाग ने अभी तक कोई भी मिनियेचर शीट नहीं निकाली. आशा है बहुरंगे टिकटों की छपाई प्रारंभ हो जाने के पश्चात् ही इस दिशा में कोई कदम उठाया जाएगा. ●

हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.).

एक किरकिरी कहानी

जुगनी

www.kissekahani.com

नागरिक शास्त्र का पीरियड.

"क़ानून का सम्मान करना हर अच्छे नागरिक का कर्तव्य है . . ." मास्टर साहब पढ़ा रहे थे.

आधी क्लास ऊंघ रही थी. कुछ सो चुके थे और कुछ दबे सुरों में एक-दूसरे के साथ अपने विचारों का आदान-प्रदान कर रहे थे.

मास्टर साहब तन्मय थे. नागरिक शास्त्र की पोथी उन्होंने बाएं हाथ में भींच रखी थी. दायां हाथ पैंट की जेब में कैद था और किताब के पन्ने बेबसी से फड़फड़ा रहे थे.

"यह अंधेर है," अंतिम लाइन में बैठा अजय मुक्का हिला-हिलाकर अज़ीम से कह रहा था, "टिंगू से समोसे के पंद्रह पैसे, काग़ज़ी कटलेट के पच्चीस पैसे और बीस पैसे वाली चाय . . . आख थू-थू थू-थू!"

अज़ीम ने होंठ भींचकर निराशा की अजीब-सी आवाज निकाली और बाईं हथेली को झटका दिया.

"कुछ न कुछ करना पड़ेगा, तुम करो या मैं करूं या सब मिलकर करें. कैंटीन वाले को क्वालिटी बढ़ानी पड़ेगी और दाम घटाना होगा."

अज़ीम ने सिर हिलाया और खुद को गहरे सोच में डुबो दिया.

मास्टर साहब अच्छे नागरिक के एक-एक कर्तव्य को दो-दो तीन-तीन बार पढ़कर बता रहे थे. फिर वह देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत करने लगे. वह कह रहे थे, "लड़कों को ही लो. साल भर मटरगश्तियां करेंगे और इम्तहान में नक़ल. भई, हम कहते हैं कि इम्तहान इम्तहान है कोई मजाक नहीं. जो साल भर पढ़ा न होगा, क्लास में ध्यान से न बैठता होगा, वह इम्तहान में क्या घास खोदेगा, एं? हे हे हे हे!" अपने मजाक पर वह खुद ही हंसे, मगर क्लास में सन्नाटा छाया रहा.

चौंककर मास्टर साहब ने लड़कों पर निगाह डाली. कुछ ऊंघते-ऊंघते संभले, कुछ खुसर-पुसर करते-करते अचानक चुप्पी साध गए.

"ऐ," उन्होंने उंगली उठाई, "कहां ध्यान है तुम्हारा?"

लड़का जो ठुड्डी पर हाथ रखे, एक आंख बंद किए सोच में डूबा था, बुरी तरह चौंका.

"सस् सर, अज़ीम . . ." वह बौखलाकर खड़ा हुआ, तो मेज उलटते-उलटते बची.

"नाम नहीं, ध्यान . . ."

"मेरा ध्यान . . ." लड़का सोच में पड़ गया. हाथ ठुड्डी तक पहुंचते-पहुंचते रह गया. एक आंख बंद होते-होते झटके से खुल गई. उसके चेहरे से परेशानी टपक रही थी.

"मेरा ध्यान . . . यहीं था!" लड़के की आंखों में उत्तर मिलने की चमक आ गई, "यस सर, यहीं था."

"हूं!" मास्टर साहब ने हलक के बल कहा, "अच्छे नागरिक के क्या कर्तव्य हैं?"

"जज् जी," लड़के की मुस्कुराहट विदा हो चली, "जी . . ."

"अरे, 'जी-जी' क्या करते हो, यहां नहीं है तुम्हारी जीजी!" मास्टर साहब ने विलेन की तरह खौफ़नाक चेहरा बनाकर डायलॉग मारा और अजय की तरफ़ उंगली उठाई.

सूनी आंखें लिये अजय ने मौन उत्तर दे दिया.

एक के बाद एक मास्टर साहब सबको खड़ा करते गए. सब सिफ़र थे.

"गधे . . ." वह दहाड़े, "डंकीज!"

सुनकर कइयों ने जल्दी-जल्दी पलकें झपकाईं, मगर कुछ कहा नहीं गया.

"यह हालत है तुम्हारी! प्रिंसिपल साहब बताते हैं कि तुम्हारी क्लास में दो तिहाई फ़र्स्ट-क्लास हैं! किस बूते पर आए हैं फ़र्स्ट क्लास? किसकी कुंजी से नकल की थी?"

जवाब नहीं आया. मास्टर साहब आपे से बाहर हो रहे थे. उन्होंने होंठ भींचकर लंबी

सांस खींची और फिर फट पड़े—

"कल तुम कॉलेजों में जाओगे. परसों नौकरी की नौबत आएगी. क्या करोगे तब? सिफ़ारिशें लाओगे..." वह अटके. वह खुद अपने मंत्री चाचा के आशीर्वाद पर नौकरी से लगे थे.

"... सिफ़ारिशें लाओगे!" वह चीखे, "भ्रष्टाचार करोगे. तुमको इतना तक याद नहीं कि अच्छे नागरिक के कर्तव्य क्या हैं! इसी अकल को लेकर तुम देश के हाथ मजबूत करोगे!"

क्लास में खामोशी छाई रही.

दोनों हाथों को बॉक्सर की तरह भींचकर मास्टर साहब दहाड़े, "गेट आउट!...आल आफ़ यू!"

लड़के बुझे हुए चेहरे उठाए वाक् आउट करने लगे. मास्टर साहब की खूंखार नज़रें उन्हें बाहर को धकेलती गईं.

...मास्टर साहब मन ही मन कलप रहे थे.

उन दिनों उन्होंने अपने मंत्री चाचा से कहा था, "चाचा जी, आपके पांव लगूं, कोई दूसरी नौकरी दिलवा दीजिए. चाचा जी..."

चाचा जी ने गोल-गोल आंखों से उन्हें ताक कर डकारा था, "क्यों?"

हाथ जोड़कर चरण छूते हुए वह बोले थे,

शाहिद अब्बास अब्बासी

"चाचा जी, देखिए वो, आप तो जानते ही हैं, देखिए ना...अब ये...टीचरी में... मैं कह रहा था...ऊपरी आमदनी का...जी हां!"

चाचा जी की ठंडी आंखें उनपर टंग गई थीं, "हूं, ऊपरी आमदनी वाली नौकरी चाहते हो, साफ़ कहो—रिश्वत वाली!"

मास्टर साहब खिसियाकर मिमियाए थे.

चाचा जी यह कहकर, "अभी तो यह शुरू करो बाद में देखूंगा," आंख मूंद गए थे. और मास्टर साहब टीचरी करने लगे थे, इस उम्मीद पर कि माह दो माह में किसी 'अच्छी' जगह पर लग जाएंगे. लड़कों से उन्हें वहशत होती थी, सब-के-सब 'ऊधमी, नालायक, सिर खाऊ!' इसलिए शुरू से ही उन्होंने उसूल बनाया था कि लड़कों से सीधे मुंह बात नहीं करेंगे और उन्हें सिर नहीं चढ़ने देंगे.

वह अपने लेक्चर तैयार नहीं करते थे—कक्षा में सीधे किताब से ही पढ़ाते थे.

शुरू में निचली कक्षाओं के कुछ लड़कों ने ऊधम मचाने की कोशिश की थी. मास्टर साहब ने उनके नाम प्रिंसपल तक पहुंचा दिए थे और प्रिंसपल ने इस लिहाज़ से कि मास्टर साहब एक मंत्री के भतीजे हैं, उन छोकरों को बुलाकर धमका दिया था. इस ग्यारहवीं क्लास में भी थोड़ी शैतानी की गई थी. शोर तो नहीं होता था, मगर कुछ लड़के उनसे उल्टे-सीधे सवाल पूछते थे. जैसे, 'अगर धरती घूम रही है, तो हम सब अपनी-अपनी जगह स्थिर कैसे रह जाते हैं...' वगैरा. मास्टर साहब ने एक-एक को डांटकर बिठा दिया था. तब से कोई उनसे सवाल-जवाब करने की हिम्मत नहीं करता था.

. . . मगर आज पता चला कि सब हैं ही ब्लैक.

लड़कों के बाद मास्टर साहब खुद भी बाहर निकल गए—कुढ़ते हुए.

●

पीरियड आधा ही बीता था. इस के बाद आखिरी क्लास थी.

अज़ीम की सूनी आंखें अजय के उबासी लेते हुए मुंह से टकराईं. बोरियत का जल्दी ही इलाज होने वाला था.

हिप्पोपोटोमस और डोल्फ़िन के चित्रों वाले सरकस के पोस्टरों ने आखिरकार उनके सब्र के बांध तोड़ दिए थे. तय हुआ था कि आज सरकस देखकर ही आएंगे.

प्रोग्राम यह था कि साढ़े चार बजे आखिरी क्लास छूटते ही लोकल ट्रेन पकड़ लेंगे, जो उन्हें साढ़े पांच तक विक्टोरिया टर्मिनस पर छोड़ देगी. वहां से सरकसवाला मैदान दूर नहीं है. आराम से सवा छह के शो के टिकट लेकर घुस जाएंगे तंबू में.

कोई दूसरा शहर हो तो तीन-चार किलोमीटर का फ़ासला बहुत समझा जाए, मगर बंबई इतना बड़ा शहर है कि घाटकोपर के इलाके से वी. टी. तक की दूरी बहुत कम मालूम पड़ती है. वर्ना यहां तो एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचने में घंटों लग जाते हैं.

"कितने पैसे लिये हैं तुमने?" अज़ीम ने पूछा.

"सात रुपये, क्यों?"

"चाय पी आए, मैंने सोचा."

"गलत सोचा, क्योंकि तुम्हारे पास मुश्किल से छह रुपये हैं. बाद में कम पड़ गए तो . . .?"

"मेरे पास छह रुपये दो पैसे हैं!"

"तो दो बूंद चाय पी आओ."

"पहले अच्छे नागरिक के कर्तव्य याद कर लूं."

"मुझे तो याद है."

"तो क्लास में बताए क्यों नहीं?"

"बता देता, तो मास्साब हमें छोड़ते कैसे!"

"अकड़ क्यों रहे हैं आप? दूसरों को भी याद है, जैसे मेरे को!"

"फिर और क्या याद करना है?"

"और . . . याद ही नहीं आ रहा. क्या पूछ रहे थे तुम?"

जवाब में अजय का घूंसा मिला पीठ पर. मगर उसके कुछ करने से पहले अजय के मुंह से फूल झरे, "चलो, चाय पिला दूं तुम्हें!"

"बाद में कम पड़ गए तो?"

"नहीं. मैं बताना भूल गया कि मैंने बड़े भाई साहब का पास ले लिया है आज के लिए."

"मतलब?"

"मतलब यह कि भाई साहब का रोज़ आना-जाना होता है, इसलिए वह वी. टी. तक का पास बनवा लेते हैं महीने भर के लिए."

"उनका पास तुम कैसे 'यूज़' करोगे?"

"मुझ से दो ही साल बड़े हैं ना. क्या पता चलेगा?"

"मगर यह तो ग़लत है."

"क्यों? मैं न सफ़र करता, तो वह करते. पैसा तो हमने भरा है ना."

"मारो गोली," अज़ीम ने एक मक्खी पर हाथ मारते हुए कहा, "चलो कैंटीन."

●

चाय पीकर कुछ दम मिला. भूगोल की क्लास भी दमदार होने वाली थी.

भूगोल के टीचर मास्टर पंजाबसिंह बड़े मज़े के आदमी हैं. पढ़ाते जाते हैं और साथ में लतीफ़े छोड़ते रहते हैं. कभी पूछते, "हां तो, बादशाहो, अमरीका कहां है?"

लड़का सोच में पड़ जाता, तो कहते, "ढूंढो ढूंढो, यहीं कहीं होगा!"

फ्रांस के बारे में पढ़ाते हुए एक दिन बताने लगे, "कुछ दिन हुए एक फ्रांसीसी भारत आया. उसने देखा कि बहुत-सी औरतों के हाथ-पैर मेंहदी और महावर से रचे हुए हैं. दरअसल वह दीवाली के पहले यहां आया होगा. वापस लौट कर उसने अपने मित्रों को बताया—भारत में स्त्रियां चित्रकारी के पीछे पागल हैं. जो कागज़ वगैरा नहीं खरीद सकतीं वे हाथ-पैरों पर ही चित्र बना डालती हैं. . . . और, हो सकता है पेट पर भी बनाती हों मगर मैं देख नहीं पाया, क्योंकि आमतौर से वे लगभग पूरा ही शरीर ढककर रखती हैं."

आज कक्षा में आते ही उन्होंने हाज़िरी का रजिस्टर खोला और बोले, "कल कौन-कौन नहीं आया था, नाम बताए."

कुछ ने खड़े होकर अपने-अपने नाम बता दिए. लिखकर मास्टर साहब बोले, "और आज जो-जो नहीं आया हो, नाम बताए!"

उसके बाद उन्होंने पढ़ाना शुरू किया. मद्रास के बारे में पढ़ाते हुए उन्होंने वहां की जलवायु, रहन-सहन, उद्योग वगैरा के बारे में बताते-बताते वहां के क्रिकेट कैप्टेन वेंकटराघवन का ज़िक्र छेड़ दिया.

पढ़ाई में मज़ा आ रहा था. पता नहीं चला, कब पीरियड पूरा हो गया. छुट्टी का सायरन बजा, तब लोग चौंके.

"एक दस मिनिट और," मास्टर साहब बोले.

"यस सर, यस सर!" आवाज़ें उठीं.

अज़ीम ने कसमसा कर अजय की तरफ़ देखा. साढ़े चार पर क्लास छूटती है. पंद्रह मिनिट और यहीं बीत गए, तो प्रोग्राम गड़बड़ . . .

क्लास छूटी तो ऐसा लगा, मानो घंटों हो गए हों. मगर पता लगा कि चार बजकर पचास मिनिट हुए हैं.

तेज़ी से दोनों सीढ़ियां उतरे. जल्दी जल्दी रेलवे स्टेशन की तरफ़ कदम बढ़ाए.

"जल्दी गाड़ी मिल जाए, भगवान!" दोनों प्रार्थना कर रहे थे.

स्टेशन के गेट के पास ही से लोकल आती हुई दिखाई पड़ी. दोनों भागे. लोकल गाड़ी सिर्फ़ एक मिनिट के लिए खड़ी होती है.

प्लेटफ़ॉर्म तक पहुंचे तब तक गाड़ी रेंगने लगी थी.

दोनों छलांग मारकर उसमें सवार हुए. किताबें और कापियां हाथ ही में रह गई थीं.

गाड़ी में भीड़ थी. उन्हें खड़े रहना पड़ा, मगर कोई गम नहीं. बातों बातों में सफ़र कब कट जाता है, पता नहीं चलता. वी. टी. आने पर ही सिलसिला टूटा.

वे उतरे और भीड़ में ठेले जाते हुए आगे बढ़े.

क्लॉक छह बजा रहा था. "सिर्फ़ पंद्रह मिनिट रह गए हैं 'शो' के. टिकट मिल जाएं तो अच्छा," अज़ीम को चिंता हो रही थी.

"टिकट!" तभी टिकट चेकर की आवाज़ आई. सफ़ेद आस्तीन से निकला हुआ हाथ टिकट मांग रहा था.

"हं अं टिकट!" अज़ीम चौंक पड़ा. अजय जेब से पास निकाल रहा था, जल्दी-जल्दी अज़ीम के हाथ आगे-पीछे की जेबों में घूमे. टिकट होता तो पाया जाता!

"जी, वह तो . . . जल्दी में . . . मैं नहीं ले पाया."

चेकर ने हाथ के इशारे से उसे एक तरफ़ खड़ा होने को कहा और दूसरे यात्रियों को निपटाने लगा.

"देखिए, माफ़ कर दीजिए . . . हमें सरकस में जाना है," अजय ने कहने की कोशिश की.

चेकर ने होंठ पर उंगली रख उसे खामोश कर दिया.

अंत में भीड़ का रेला कम हुआ. "चलो," चेकर आगे बढ़ता हुआ बोला.

"कहां . . . कहां?"

"रसीद लेने. थाना से यहां तक के किराए और जुर्माने की रसीद!"

"मगर हम तो घाटकोपर से बैठे हैं."

"कोई फ़र्क नहीं पड़ता. कायदे के हिसाब से जहां से गाड़ी आई है वहां से तुम्हें बैठा हुआ माना जाएगा. निकाल लो बारह-तेरह रुपये."

"बारह-तेरह!" दोनों के होश उड़े जा रहे थे.

"दस इसमें जुर्माने के!"

"बाप रे बाप!" अज़ीम मियां को नानी अम्मा की बेमौके याद आने लगी.

"देखिए, सर," वह बोले, "मैं हमेशा टिकट लेता हूं, जी हां. आज दरअसल मास्साब ने क्लास देर से छोड़ी तो हड़बड़ी में . . ."

"पकड़े जाने पर सब ऐसा कहते हैं. किस क्लास में हो?"

"ग्यारहवीं में."

"यही सब सीखा है स्कूल में? डब्ल्यू. टी. फिरना और झूठ बोलना!"

चेकर की बात झल्लाने वाली थी.

"नहीं नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता और न चार सौ बीसी करता हूं. पिता जी भी कभी बेईमानी नहीं करते. डिप्टी कलक्टर हैं, फिर भी रिश्वत नहीं लेते . . ."

"ऐसे अच्छे पिता के पुत्र होकर तुम . . ."

अज़ीम की मुट्ठियां भिंचीं, चेहरे पर पसीना उभरा, मगर बोल नहीं फूटे.

रुककर टिकट चेकर ने उसे टटोला.

"अच्छा, खैर, तुम सरकस देखना चाहते हो?"

"हां."

"कितने पैसे हैं तुम लोगों के पास?"

"कुल तेरह रुपये."

"जुर्माना भरोगे तो सरकस देख पाओगे?"

"नहीं."

"तो ऐसा करो," उसने आस-पास देखा, "इनमें से तीन मुझे दे दो और जाकर मजे करो."

"तीन किस बात के?"

"माफ़ करने के . . . जल्दी करो जो कुछ करना हो?"

अज़ीम की निगाहें अजय की तरफ़ उठीं. उसके चेहरे पर भी अब पसीने की बूंदें झलक आई थीं. उसके शब्द फुफकार की तरह निकले, "आप रिश्वत लेना चाहते हैं?"

उसकी निगाहों की कड़वाहट से चेकर का चेहरा बिगड़ने लगा, "ओफ़्फ़ोह!" वह दांत पीसते हुए बोला, "तुम लोग मानोगे नहीं, चलो!" वह बड़ा, "चोरी और ऊपर से सीनाज़ोरी!"

"चलो," अज़ीम का हाथ अजय के कंधे पर टिक गया, "मैंने बिना टिकट आने की गलती कर दी थी, अब दूसरी गलती कैसे कर दूं तीन रुपये रिश्वत के देकर!"

पैर पटकते हुए चेकर के पीछे वे इत्मीनान से चल दिए आफ़िस की तरफ़.

"पैसे निकालकर तैयार रखो," चेकर मुड़कर नथुने फुलाए हुए बोला.

"फ़िक्र न करो," अजय ने जवाब दिया.

●

कुछ देर बाद वे वापसी गाड़ी से लौट रहे थे, बिना सरकस देखे. मगर गमगीन नहीं थे, मजा ज़रूर किरकिरा हो गया था.

उन्होंने तय किया कि कल नागरिक-शास्त्र वाले घंटे में वे कैंटीन मालिक के लिए एक विरोध-पत्र लिखेंगे. हो सकता है, दाम कुछ कम कर ही दे.

●

होस्टल नं. 1, रूम नं. 72, आई. आई. टी., पवई, बंबई-76.

'पराग' किशोर कथा-प्रतियोगिता नं. २

• प्रथम पुरस्कार १००० रु • द्वितीय पुरस्कार ५०० रु

• तृतीय पुरस्कार ३०० रु

१००-१०० रुपये के दो पुरस्कार दो अन्य विशिष्ट कथाओं पर

अब 'पराग' का अपना क्षेत्र विस्तृत हो गया है. वह प्रमुख रूप से किशोर पाठक-वर्ग को अपने पाठकों में सम्मिलित कर रहा है. यह वह आयु-वर्ग है, जो एक ओर बचपन को तिलांजलि दे रहा होता है, तो दूसरी ओर अपने आपको वयस्कों में शुमार करने लगता है. माता-पिता और संरक्षकों के अनजाने ही, वह उन बंधनों को बलात् या चुपचाप तोड़ देना चाहता है, जो बच्चों की सुरक्षा की दृष्टि से उन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगे रहते हैं. उसके स्वप्न सुनहरे होते हैं, यथार्थ उसके सामने धूमिल होता है, वह उत्तरदायित्वों का मखौल उड़ाना चाहता है. और उनमें कसता जाता है, और वह जीवन के गुलाबों के पीछे छिपे कांटों से छिदकर भी उन्हें तोड़ लेना चाहता है. वह उतावला होता है, उत्साही होता है, अधीर होता है, साहसी होता है, और उद्वेलित होता है. यह वह वर्ग है, जो बड़ों की दृष्टि में अविचार, नासमझी, दुस्साहस, विरोध और विद्रोह का पुंज होता है—किंतु वास्तव में वह मात्र दिशाहीन शक्ति का अपार भंडार होता है.

हमें भारतीय किशोर-किशोरियों की आत्मा के अनुरूप ऐसी मौलिक कथाओं की दरकार है, जिनके पात्र अपने समस्या ग्रस्त परिवार, दूषित वातावरण, खंडित व जीर्णशीर्ण परंपराओं से जूझते हुए, अपनी समस्त दुर्बलताओं के अंधेरे में हाथ-पैर मारते हुए, अपने लिए एक नए जीवन का अनुशीलन करने के लिए कृत संकल्प हों. वे पात्र कदाचार से ग्रस्त भारतीय शिक्षा-व्यवस्था, परीक्षा-प्रणाली, राजनीतिक अनाचार, गुरु-शिष्य संबंध, स्वीकृत यौनाचार, सामाजिक अर्थाचार, सभी को संदेह की दृष्टि से देखते हैं, और अपनी सद्य-प्राप्त शक्ति के बल पर उनसे भिड़ जाने के लिए अधीर हो उठते हैं. उन कथाओं में अत्यावश्यक मनोरंजन तो हो ही, किशोरों के मनोवैज्ञानिक यथार्थ और उन सभी तत्वों के संघर्ष का दिग्दर्शन भी हो, जिन्होंने आज के किशोर-मस्तिष्क को आक्रांत कर रखा है.

आवश्यक नियम

1—कहानी सामान्यतः 4,000 से 6,000 शब्दों के बीच होनी चाहिए.

2—वह अनिवार्यतः अप्रकाशित, अप्रसारित तथा मौलिक होनी चाहिए. अनूदित, रूपांतरित या अन्य भाषाओं की कहानियों के आधार पर लिखित कहानियों पर विचार नहीं किया जाएगा.

3—लिफ़ाफ़े तथा पांडुलिपि के ऊपर, बायें कोने पर 'पराग' किशोर कथा-प्रतियोगिता नं. 2' लिखा होना चाहिए.

4—एक लेखक या लेखिका दो से अधिक कहानियां प्रतियोगिता के लिए न भेजें.

5—प्रत्येक पांडुलिपि के ऊपर एक कोरा कागज़ अलग से लगा होना चाहिए, जिस पर लेखक-लेखिका का पूरा पता, कहानी का शीर्षक, भेजने की तिथि, आवश्यक विवरण दर्ज हों. पांडुलिपि के अंत में भी लेखक-लेखिका का पूरा पता दर्ज होना चाहिए.

6—अस्वीकृत पांडुलिपियों को उसी अवस्था में वापस किया जाएगा जबकि उनके साथ लेखक-लेखिका का पता लिखा व पूरे टिकट लगा लिफ़ाफ़ा लगा होगा.

7—पांडुलिपि फुलस्केप कागजों की एक ओर, एक चौथाई हाशिया छोड़कर, स्पष्ट, सुपाठ्य व स्वच्छ अक्षरों में लिखी होनी चाहिए—या नए रिबन से टाइप की हुई मूल प्रति होनी चाहिए.

8—पांडुलिपियां 15 अगस्त 1971 के बाद संपादक, 'पराग' (किशोर-कथा प्रतियोगिता नं. 2), 10 दरियागंज, दिल्ली-6 के पते पर भेजी जानी चाहिएं.

9—पांडुलिपियां हमें अधिक से अधिक 15 अक्तूबर 1971 तक मिल जानी चाहिएं.

10—प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा अन्य दो विशिष्ट पुरस्कार योग्य कहानियों को 'पराग' का संपादक मंडल चुनेगा, तथा उसकी घोषणा मार्च 1972 के अंक में कर दी जाएगी.

11—इस प्रतियोगिता के संबंध में, किसी भी स्तर पर, पराग-संपादक का निर्णय सर्वमान्य होगा.

इस बेचारे दांत की हत्या कर दी गयी!

बड़ी ही बेरहमी से। तिलतिल जलाकर। और इस दर्दनाक सच्चाई का पर्दाफ़ाश तब हुआ जब दांत ही साफ़ हो चुका था। गुनाहगार कौन था? लापरवाही। जानते हुए भी ऐसे वैसे टूथपेस्ट से ब्रश करने की लापरवाही।

काश! इस दांत के मालिक ने नियमित रूप से बिनाका फ़्लोराइड इस्तेमाल किया होता। तो आज यह दिन न देखना पड़ता। क्योंकि बिनाका फ़्लोराइड में एस एम एफ़ पी है, जो दांतों की तीन तरह से हिफ़ाज़त करता है:

- इनेमल को मज़बूत बनाता है
- मुंह में एसिड नहीं बनने देता
- दंत-क्षय रोकता है

अपने दांतों की हत्या मत कीजिए!
दांतों की हिफ़ाज़त के लिए

बिनाका फ़्लोराइड

C I B A Cosmetics

ULKA-CF-30 HIN

सी० आई० डी० नं० 000 (पृष्ठ 6 से आगे)

सोचने लगी, "क्या पापा मेरी शादी करेंगे?"

उसकी इस बात पर मम्मी और गंगाबाई दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं. चित्रा को बड़ा बुरा लगा. बोली—"उस दिन तुमने ढेर के ढेर चावल ले लिये थे, तो पापा कह नहीं रहे थे कि हमें क्या चित्रा की शादी करनी है!"

"तेरे पापा की यही तो आदत है. खुद जो भी करेंगे सब ठीक होता है. सुना, गंगाबाई, उस दिन मैंने तीस किलो चावल ले लिये, तो इतने नाराज हुए और अब यह आधी तनखा गेहूँ के लिए खर्च हो रही है. इतने सारे गेहूँ रखने तक का साधन नहीं है घर में. अच्छा अब हिसाब करो. चित्रा, थोड़ी देर उधर खेल लो. तेरी वजह से हिसाब में बराबर भूल होती है."

मजबूरन चित्रा को वहाँ से उठना पड़ा. मन ही मन हिसाब लगाती रही कि मम्मी को गेहूँ रखने के लिए कितना बड़ा ड्रम खरीदना पड़ेगा. उसी समय 'किशोर स्कूल' की बस जाती हुई नजर आई. उसे अपनी बस की याद आई और वह दौड़कर अंदर आई—"मम्मी, हमारी बस अभी तक नहीं आई?"

मम्मी उस समय सेफ बंद कर रही थी. उनके हाथों में नोटों का एक बंडल था. बोली—"बस अपने समय से आएगी. उसे तुम्हारी तरह जल्दी थोड़े ही है."

"तो अभी बारह नहीं बजे?"

"अभी कहां . . . मुश्किल से साढ़े ग्यारह हो रहे होंगे."

"सिर्फ साढ़े ग्यारह . . . मम्मी, फिर पापा दफ्तर कैसे पहुंच गए? वह तो स्टेशन जाने वाले थे. वहाँ से सर्किट-हाउस और फिर दफ्तर. गाड़ी जल्दी आ गई होगी क्या?"

"हाँ, सच तो!" मम्मी बाहर जाते-जाते एकदम रुक गईं. उनका चेहरा एकदम न जाने कैसा-कैसा हो गया. नोटों का बंडल उन्होंने कसकर पकड़ रक्खा था.

"बाई साब . . . ." यह गंगाबाई की आवाज थी. यह साहब की खराब आदत है. उनसे कहो, कोई चीज घर से मंगाएं, तो चिट्ठी लिखकर दिया करें. आजकल किसी का क्या भरोसा किया जा सकता है?"

"तू ठीक कह रही है," मम्मी कुछ सोचते हुए बोलीं—"गंगाबाई, मैं जरा चतुर्वेदी साहब के यहाँ से फोन करके आती हूँ. तुम घर में चित्रा के पास ठहरना जरा."

मम्मी चप्पलें पहनकर खटाखट सीढ़ियां उतर गईं. चित्रा ड्राईंग रूम में आ गई.

"बेबी, मम्मी से कहना, जरा जल्दी करें, देर हो रही है." शर्मा ने कहा.

"मम्मी, अभी आ रही हैं. फोन करने गई हैं." चित्रा ने भोलेपन से जवाब दिया. पर शर्मा ऐसे चौंका, जैसे बिजली का करेंट छू गया हो. इसके पहले कि चित्रा कुछ समझती, वह सीढ़ियां उतर गया. थोड़ी ही देर में गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज आई.

मम्मी हांफती-हांफती सीढ़ियां चढ़कर आई ही थीं कि—"हाय मेरा रेडियो!" कहकर वहीं बैठ गईं.

●

चित्रा की जरा भी इच्छा नहीं थी, पर उसे स्कूल जाना ही पड़ा, इम्तहान जो नजदीक आ रहे थे.

शाम को लौटी, तो पापा के साथ खाकी वर्दी वाले एक महाशय ड्राईंग रूम में बैठे थे. पहले तो उसे बड़ा डर लगा, पर उन्होंने जब प्यार से गोद में बिठा लिया, तो सारा डर छूमंतर हो गया.

उन्होंने और पापा ने मिलकर उससे ढेर सारे प्रश्न पूछे. उसने बिना झिझक सब प्रश्नों के उत्तर दिए. गाड़ी का रंग और नंबर तो उसने बताया ही, साथ ही यह भी कि ड्राइवर गंजा था.

उसने 'शर्मा अंकल' के बारे में बताया कि उनकी पैंट काली थी, शर्ट सफेद चारखाने की, जूते मनोज चाचा जैसे थे; सिगरेट का पैकेट अष्ठाना अंकल के समान था; बटुआ गहरे भूरे रंग का था जिस पर ताजमहल बना हुआ था. उनका एक दांत सोने की तरह चमक रहा था. आंखें बोलते समय 'मिचमिची' हो जाती थीं. सामने के बालों में एक गुच्छा सफेद बालों का था. वह तिवारी अंकल से भी ज्यादा ठिगने थे.

इंस्पेक्टर साहब सारी बातें लिखते जा रहे थे. उठते हुए बोले—"भाई साहब, बेबी ने तो हमें सारा हुलिया ही नोट करवा दिया है. आपकी मिसेज और नौकरानी हमें इसका दसवां हिस्सा भी नहीं बता पाई थीं. अब आपका रेडियो तो मिल ही जाएगा, पर पूरा गैंग गिरफ्तार हो सकता है. इन लोगों ने बड़ा तंग कर रखा है." फिर चित्रा के गालों को थपथपा कर बोले—"बड़ी प्यारी बच्ची है? क्या नाम है?"

"सी. आई. डी. नं. 000!" पापा ने कहा और सब हंस पड़े.

चित्रा शरमा कर रसोई में भाग गई. उसे इस कदर भूख लग रही थी और ये लोग थे कि बातें ही किए जा रहे थे. ●

105/12 दक्षिण तात्याटोपे नगर, भोपाल (म.प्र.)

जहले पर दहला (पृष्ठ 22 से आगे)

समझाने में जुट गए. सवाल सचमुच ही कठिन था. उन्होंने सोचा कि कोई आश्चर्य नहीं यदि राजू-बबली-टिकू—सभी इस सवाल पर अटके हों. दादा जी के दिमाग में रेलगाड़ी तो पहले ही दौड़ रही थी. राजू को सवाल समझाते-समझाते इस रेलगाड़ी के ऊपर एक जंगी जेट भी उड़ने लगा.

राजू के विदा होते ही छुन्नू पधार गया. दादा जी ने उसे देखते ही तिनक कर पूछा—"तुम मुझसे चक्रवृद्धि ब्याज का चौथा प्रश्न समझने आए हो न?"

छुन्नू की आंखें फटी की फटी रह गईं. उसने विस्मय से पूछा—"दादा जी, आप तो पक्के ज्योतिषी हैं. आपको कैसे पता चला कि मैं आप से चक्रवृद्धि ब्याज का चौथा प्रश्न समझने आया हूं."

दादा जी का पारा सात आसमान फाड़ कर आठवें पर जा पहुंचा. वह छुन्नू पर बरसने ही वाले थे कि वहां बबली किताब उठाए आ पहुंचा. दादा जी के निकट बैठकर वह प्रेम से बोला—"दादा जी, जब आप छुन्नू को सवाल समझा लें, तो मुझे भी एक सवाल समझा दीजिएगा."

तभी वहां टिकू आ टपका. पांच मिनिट से भी कम समय में गली के सारे बच्चे दादा जी के कमरे में आ जुटे. सबके हाथ में गणित की पुस्तकें थीं और सब कोई न कोई सवाल समझने आए थे. यहां तक कि नन्ही आशा भी यह पूछने चली आई कि चौदह गुना सात कितने होते हैं!

दादा जी कुछ मिनिट बोझिल आंखों से बच्चों को घूरते रहे. बबली तत्परता से सबको लाइन में लगाने लगा—"सारे जने अपनी अपनी बारी से सवाल समझें. खबरदार, कोई बच्चा लाइन तोड़ने की कोशिश नहीं करेगा. छुन्नू का पहला नंबर है, मेरा दूसरा और टिकू का तीसरा. . ."

दादा जी गरजे—"ऑल ऑफ यू गेट आउट! मैं किसी को कोई सवाल नहीं समझाऊंगा!"

बबली ने तुरंत कहा—"दादा जी, यह कैसे हो सकता है! आपने तो कहा है कि परीक्षा से पहले मैं सब की कठिनाइयां दूर करूंगा."

दादा जी बोझिल स्वर में बोले—"जाओ जाओ, अब कोई परीक्षा नहीं होगी."

बच्चों ने विरोध किया—"दादा जी, यह नहीं हो सकता! अब हम परीक्षा की तैयारी कर चुके हैं."

"यही तो मैं चाहता था कि तुम लोग परीक्षा के बिना भी पढ़ा करो!" कहकर दादा जी ने चादर ओढ़ ली. अगले ही पल कमरे में दादा जी के खर्राटे गूंज रहे थे. ●

अरावली, आई. आई. टी., नई दिल्ली-29

अभी से बचत शुरू कीजिए
तभी तो आप ये काम पूरे कर सकेंगे

आपको रुपयों की जरूरत होगी—अपनी प्यारी बिटिया की शादी के लिये, अपने बेटे की उच्च शिक्षा के लिये। और शायद परिवार के लिये आप एक मकान भी बनवाना चाहें। इलाहाबाद बैंक के पास हर व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुकूल बचत की अनेक योजनायें हैं।

बैंक में आपका स्वागत है। आइये और देखिये कि आपकी रकम कैसे बढ़ती है। इलाहाबाद बैंक की निकटतम शाखा में पधारिये और अपनी समस्याओं को हल कीजिये।

इलाहाबाद बैंक

प्रधान कार्यालय :
१४, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-१

PSAB 21 H

समृद्ध अर्थ व्यवस्था की ओर

रंग भरो प्रतियोगिता नं. 109 का परिणाम

'पराग' की रंग भरो प्रतियोगिता नं. 109 में जिन तीन प्रतियोगियों के चित्रों को पुरस्कार योग्य चुना गया है, उनके नाम और पते इस प्रकार हैं :

● कु. गिरिजा जैसवाल, द्वारा श्री सुरेशचंद्र जैसवाल, चौक बोहरान डिबाई, बुलंदशहर (उ. प्र.).

● आभा सक्सेना, द्वारा श्री वी.एन. सक्सेना, अधीक्षक, भू-अभिलेख, बिलासपुर (म. प्र.).

● कु. शकुंतलासिंह, द्वारा डा. चंद्रपालसिंह, म. नं. 412, पन्नालाल पार्क, उन्नाव (उ.प्र.).

प्रयास करने वालों में से इनके प्रयास अच्छे रहे :

कु. रेनू बब्बर, कानपुर; कुंदनलाल, शाहजहांपुर; प्रशोतमलाल केशप, जालंधर; कु. वर्षा वी. भीडे, बंबई; नवीनचंद्र कापरी, हमीरपुर; कु. अर्चना सिंह, इलाहाबाद; कु. नाजनीन रहीम, भोपाल; नीलिमा जैन, मुजफ्फरनगर; नीलम ठुकराल, रुड़की; माया माथुर, जोधपुर; अतुलअखिल जैन, इलाहाबाद; कु. प्रकाश कौर, गोरखपुर; रेनू गोयल, बुलंदशहर; सिद्धांत मेश्राम, खड़गपुर; सुनीता चोपड़ा, दिल्ली; बलविंदरसिंह बिरदी, बंबई; इंद्रजीतसिंह, इम्फाल; उमेशचंद्र रस्तोगी, मुरादाबाद; हरीशंकर गुप्ता, इलाहाबाद; जावेद आलम खान, पटना; नीलम गोयल, बरेली; शरत्कुमार गुप्ता, बरेली; नलिन श्रीवास्तव, राजनांदगांव; दिलीपकुमार गुप्ता, राजगढ़; गीता विश्वास, वाराणसी; कु. चमन पींचा, चूरू; लताकुमारी बुर्जवाल, बहजोई (मुरादाबाद); अनिलकुमार अग्रवाल, नई दिल्ली; चंद्रकला जैन, बहराइच; कु. ललिता-द्विवेदी, लखनऊ; अब्दुल नईम, वाराणसी कैंट; कु. राज्यश्री पांडे, हरिद्वार; शालिनी श्रीवास्तव, गड़नोखा; कु. उमा कानोडिया, बंबई; आलोक गोयल, गोरखपुर; प्रकाशचंद्र दवे, बस्तर; सुभाषचंद्र पाल, गोरखपुर; सुषमा आर्य, देहरादून; राजेश कपूर, कलकत्ता; कु. इन्दु बाला, गोरखपुर; पुलिनबिहारी मिश्र, डालटनगंज; दिनेशचंद्र पांडे, नैनीताल; खलील अहमद, बहराइच; लीलीकुमारी, पतरातू; अजयकुमार वर्मा, बदायूं; कु. अन्ना वैद्य, कानपुर और तेजकुमार श्रीवास्तव, लखनऊ.

'पराग' रंग भरो प्रतियोगिता- 112

बच्चो, नीचे का चित्र है न मजेदार! काश, यह रंगीन होता, तो क्या ही कहना था!

चलो, तुम ही रंग भरकर इसे हमारे पास 20 अक्तूबर तक भेज दो. हां, अगर तुम्हारा खयाल हो कि चित्र की पृष्ठभूमि को तुम अपनी कल्पना से और ज्यादा उभार सकते हो, तो रंगों द्वारा उसे चित्रित करने की तुम्हें स्वतंत्रता है. सबसे अच्छे रंग भरने वाले तीन प्रतियोगियों को एकसे सुंदर इनाम मिलेंगे. लेकिन रंग भरने वालों की उम्र 12 साल से अधिक नहीं होनी चाहिए और उन्हें 'वाटर कलर' ही उपयोग में लाने चाहिएं. चित्र के नीचे वाला कूपन भरकर भेजना जरूरी है. पूतियां भेजने का पता: संपादक, 'पराग' (रंग भरो प्रतियोगिता नं. 112), 10 दरियागंज, दिल्ली-6.

यहां से काटो

कूपन

'पराग' रंग भरो प्रतियोगिता - 112

नाम और उम्र ----------

पूरा पता ----------

यहां से काटो

महान आकांक्षाएँ?

डीलक्स कैमल इंक इस्तेमाल कीजिए।

Vision 711 Hin

नन्हे मुन्नों के लिए

नए शिशुगीत

पिछले कई वर्षों से 'पराग' में शिशु गीत छापे जा रहे हैं. इन शिशु गीतों के चयन में बड़ी सावधानी बरती जाती है. क्योंकि शुद्ध शिशु गीत लिखना उतना आसान नहीं है, जितना समझा जाता है, इसी लिए अच्छे गीत बहुत कम लिखे जाते हैं. ये गीत ऐसे होने चाहिएं कि इन्हें चार से छह साल तक के बच्चे आसानी से जबानी याद कर लें और अन्य भाषा-भाषी किशोर भी इनका आनंद ले सकें. इनसे मुहावरेदार हिंदी सरलता से जबान पर चढ़ जाती है.

उल्टी खबरें

बंदर ने अखबार निकाला;
उल्टी खबरें छापीं,
घर में आई पुलिस देखकर,
बंदरी थरथर कांपी;

बंदर ने यों कहा—'डरो मत
यह खबरों की माया!
रिश्वत लेने वाला देखो,
रिश्वत देने आया!'

—तारादत्त 'निर्विरोध'

www.kissekahani.com

मक्खीचूस

एक सेठ जी थे कंजूस,
नाम पड़ गया मक्खीचूस!
मक्खीचूस पड़े बीमार,
दवा मँगाई मगर उधार!

बिल में देखे, रुपये चार,
फिर चढ़ आया उन्हें बुखार!

—सीताराम गुप्त

लाओ मोटरगाड़ी

लंबकर्ण की बीबी बोली,
'सुन, मेरे घरवाले,
पैदल चलते रोज सड़क पर,
पड़े पांव में छाले!

शादी को दो वर्ष हो गए,
लाए एक न साड़ी;
अब यह चप्पल नहीं चलेगी,
लाओ मोटरगाड़ी!'

—यादराम 'रसेंद्र'

उद्धरण प्रतियोगिता नं० 33 का परिणाम

सही उत्तर : १–शाप, २–डोल, ३–गुड़िया, ४–शान, ५–छाया, ६–लंगड़ी, ७–पालकी, ८–उठा, ९–खिला-खिलाकर, १०–जकड़ा, ११–कोजिएगा, १२–रात.

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं० 33 में दो सर्वशुद्ध हल प्राप्त हुए, इसलिए प्रथम पुरस्कार सर्वशुद्ध हल पर दो प्रतियोगियों ने जीता, जिनमें से प्रत्येक को 350 रुपये प्राप्त हुए. इसी प्रकार एक अशुद्धि पर 15 प्रतियोगियों में से प्रत्येक को 20 रुपये प्राप्त हुए.

अगर आपको पूरा भरोसा है कि आप पुरस्कार के हकदार हैं और आपका नाम पुरस्कार विजेताओं की सूची में नहीं है, तो आप 20 अक्तूबर 1971 से पूर्व **प्रतियोगिता संपादक, 'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता पो. बॉक्स नं० 207, टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई–1** के पते पर एक पत्र लिखें. उस पत्र में अपनी पूर्ति की अशुद्धियों की संख्या, पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर या नकद रसीद का नंबर दें. साथ में जांच की फीस के रूप में एक रुपया मनी आर्डर या पोस्टल आर्डर द्वारा भेजें. यदि आपका दावा सही होगा, तो पुरस्कार की राशि को उस के अनुसार फिर से वितरित किया जाएगा.

पुरस्कार की राशि अक्तूबर 1971 में कार्यालय से भेजी जाएगी.

सर्वशुद्ध हल वाले २ विजेता : प्रत्येक को ३५० रुपये

1–शेखर उपाध्याय, पुत्र दीनदयाल उपाध्याय, पुस्तिकाकार, गणेशघाट, सागर (म. प्र.). 2–अजय, 'विजय' कार्यालय, रूपरेखा, कनाट प्लेस, देहरादून (उ. प्र.).

एक अशुद्धि वाले १५ विजेता : प्रत्येक को २० रुपये

1–प्रदीप कु. अग्रवाल, पो. फारबिसगंज. 2–एस. एम. चुघ, दिल्ली. 3–पी. एन. चुघ, दिल्ली. 4–राजेंद्रकुमार अग्रवाल, चंदौसी. 5–ज्ञान, देहरादून. 6–कमलचंद गोलछा, पो. फारबिसगंज. 7–नीना, देहरादून. 8–रेखा, देहरादून. 9–राजेश, देहरादून. 10–राणा, नई दिल्ली. 11–रूपचंद, देहरादून. 12–शैलेश, देहरादून. 13–संजय, देहरादून. 14–सरिता, देहरादून. 15–श्रीमती शकुंतला कुमारी, दिल्ली.

जिन पुस्तकों से संकेत-वाक्य लिये गए

1–देवताओं की कहानियां–ले. राजबहादुर सिंह,—प्र. आत्माराम एंड संस, दिल्ली–पृ. 12. 2–प्रसिद्ध आविष्कारों की कहानी–ले. सुखदेव प्रसाद बरनवाल—प्र. राजपाल एंड संस, दिल्ली–पृ. 114. 3–टेलीविजन की कहानी—ले. राजीव सक्सेना—प्र. रामप्रसाद एंड संस, आगरा—पृ. 39. 4–भारत के साहसी वीरों की गाथाएं—ले. धर्मपाल शास्त्री—प्र. उमेश प्रकाशन, दिल्ली—पृ. 73. 5–उपर्युक्त—पृ. 66. 6–फूल और कांटे—ले. सावित्रीदेवी वर्मा—प्र. आत्माराम एंड संस, दिल्ली—पृ. 19. 7–उपर्युक्त—पृ. 46. 8–उपर्युक्त—पृ. 50. 9–जर्मन परी-कथाएं भाग-3—ले. ग्रिम बंधु–प्र. बंबई बुक हाउस, बंबई–पृ. 27. 10–बजरंगी पहलवान—ले. अमृतलाल नागर—प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली—पृ. 17. 11–बजरंगी नौरंगी—ले. व प्र. उपर्युक्त—पृ. 7. 12–उपर्युक्त—पृ. 11.

1000 रुपये के नकद इनाम

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 36

सर्वशुद्ध या निकटतम पूर्ति पर 700 रु.
न्यूनतम अशुद्धियों पर 300 रु.

इस प्रतियोगिता के संकेत-वाक्य विस्तृत हिंदी साहित्य से लिये गए हैं. इसलिए जो पाठक सबसे अधिक पुस्तकें पढ़ते होंगे, उनके लिए खेल-खेल में एक हजार रुपये जीतने का यह स्वर्ण अवसर है.

सामने के पृष्ठ पर 14 संकेत-वाक्य दिए गए हैं. प्रत्येक वाक्य में एक शब्द का स्थान डैश लगाकर छोड़ दिया गया है. उसी पृष्ठ पर एक पूर्ति-कूपन है. जिसमें दो पूर्तियां दी गई हैं. जिस क्रमांक का संकेत-वाक्य है, प्रत्येक पूर्ति में उसी क्रमांक के आगे अकारादि क्रम से दो शब्द दिए गए हैं. उनमें से एक शब्द सही है, और दूसरा गलत. बस, आप गलत शब्द पर × का निशान लगा दीजिए.

'पराग उद्धरण प्रतियोगिता' के नियम और शर्तें

1—एक पूर्ति-कूपन में दो पूर्तियां दी गई हैं. आप एक पूर्ति भरें या दोनों—पूरा कूपन रेखाओं पर काटकर भेजना होगा. पूर्तियां 'पराग' में प्रकाशित पूर्ति-कूपनों पर ही स्वीकार की जाएंगी. यदि आप केवल एक ही पूर्ति भरें, तो दूसरी पूर्ति को क्रास कर दीजिए, और उसके नीचे पूर्ति क्रमांक आदि कुछ न भरिए.

2—पूरे कूपन की दोनों पूर्तियों का प्रवेश-शुल्क 1 रुपया और केवल एक पूर्ति का प्रवेश-शुल्क 50 पैसे है. दोनों में से किसी भी पूर्ति को आप पहली मान सकते हैं. एक ही नाम से आप चाहे जितनी पूर्तियां भेज सकते हैं. एक ही लिफाफे में अनेक नामों और परिवारों की पूर्तियां भेजी जा सकती हैं. लिफाफे के अंदर रखी सभी पूर्तियों का सम्मिलित प्रवेश-शुल्क एक ही पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर, या नकद रसीद से भेज सकते हैं. किंतु ऐसी सभी पूर्तियों के नीचे कुल पूर्तियों की संख्या, उनके क्रमांक, और पूर्ति-कूपन में पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर की रसीद, या नकद रसीद का नंबर लिखना अनिवार्य है. पोस्टल आर्डर, या डाकखाने से मिली मनी आर्डर की रसीद या नकद रसीद पूर्तियों के साथ अवश्य नत्थी करके भेजिए. डाक-टिकट या करेंसी नोट प्रवेश-शुल्क के रूप में स्वीकार नहीं किए जाएंगे. आप कार्यालय में नकद रुपया जमा करके या डाक-खर्च सहित मनी आर्डर भेज कर 50 पैसे मूल्य की चाहे जितनी नकद रसीदें प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें अगले चार महीने तक, प्रवेश-शुल्क के रूप में, पूर्तियों के साथ नत्थी कर सकते हैं.

3—बंबई के प्रतियोगी अपनी पूर्तियां 'टाइम्स आफ इंडिया भवन' के प्रवेश द्वार पर बनी 'स्थानीय प्रवेश पेटी' में डाल सकते हैं. बंबई में या डाक से आने वाली सभी पूर्तियों के लिफाफों के खुलने वाली तरफ भेजने वाले का पता, तथा उनके पीछे यह पता लिखा होना चाहिए—'पराग उद्धरण प्रतियोगिता नं.36', प्रतियोगिता विभाग, पोस्ट बैग नं. 207, टाइम्स आफ इंडिया भवन, बंबई-1. मनी आर्डर फार्मों और रजिस्टरी से भेजे जाने वाले लिफाफों पर 'पोस्ट, बैग नं.207' न लिखें. पोस्टल आर्डर क्रास कर दें. उसमें 'पाने वाले' के स्थान पर 'पराग उद्धरण प्रतियोगिता नं.36' और 'पोस्ट आफिस' के आगे—'बंबई-1'—लिखें. कृपया संपादक के नाम पूर्तियां या शुल्क न भेजें.

4—प्रथम पुरस्कार 700रु. उन प्रतियोगियों को मिलेगा, जिनकी पूर्तियों में संकेत-वाक्यों के सही पूरक शब्दों पर निशान नहीं होंगे, और सभी गलत शब्दों पर निशान लगे होंगे. यदि ऐसी कोई पूर्ति प्राप्त न हुई, तो उसके निकटतम अशुद्धियों वाली पूर्तियों पर प्रथम पुरस्कार दिया जाएगा. द्वितीय पुरस्कार 300रु. प्रथम पुरस्कार प्राप्त पूर्तियों से निकटतम अशुद्ध पूर्तियों पर प्रदान किया जाएगा. समान अशुद्धियों के एक से अधिक विजेताओं को घोषित पुरस्कार बराबर बांटे जाएंगे.

5—अपना नाम और पता प्रत्येक पूर्ति-कूपन पर सुपाठ्य और स्पष्ट अक्षरों में लिखिए. डाक में खो जाने वाली, विलंब से प्राप्त होने वाली, या गंदी व कटी-फटी पूर्तियां प्रतियोगिता में शामिल नहीं होंगी.

6—सभी पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि सोमवार, 8 नवंबर 1971 है. अपनी पूर्तियां भेजने के लिए अंतिम तिथि की प्रतीक्षा न कीजिए. निर्धारित अवधि के प्रारंभिक दिनों में ही पूर्तियां भेज देने से आप अनेक भूलों से बच सकते हैं. सर्वशुद्ध शब्दावली तथा संबंधित पुस्तकों व पुरस्कार विजेताओं की सूची 'पराग' के जनवरी 1972 के अंक में प्रकाशित की जाएगी.

7—प्रतियोगी को इस प्रतियोगिता से संबंधित प्रत्येक विषय में प्रतियोगिता संपादक का निर्णय अंतिम रूप से मान्य होगा. वैधानिक रूप से विवादास्पद विषयों में बंबई के संबद्ध न्यायालय को ही निर्णय देने का अधिकार होगा.

8—नियमों के प्रतिकूल तथा पूर्ति-कूपनों में आवश्यक विवरण से रिक्त कोई भी पूर्ति प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं की जाएगी. 'पराग' तथा संबद्ध प्रकाशनों के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं होगा.

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं० 36 के संकेत-वाक्य

1. उनकी इसी ····से विदेशी लाभ ले रहे थे, जिनका रक्त-रंजित पंजा आसपास के प्रदेश पर अपने खूनी नाखून गड़ा चुका था.
2. महाराज, समस्त प्रजा के स्वामी हैं. सारे अधिकार महाराज के अधीन हैं. इस गरीब ····बच कर कहाँ जाएंगे?
3. वर्णद्वेष की आग अफ्रीका में, दक्षिण अमेरिका में, गोरी दुनिया में बहुत जगह बराबर ····रही है.
4. भारत औद्योगीकरण कर रहा है और उसमें वह उन सब चीजों से कैसे बच पाएगा, जिनसे पश्चिम के महानगर ····हैं?
5. मनुष्य की अच्छाई-बुराई का ····केवल उसके आसपास के भौतिक साधनों की संख्या या गुण मान लेना, मनुष्य के साथ अन्याय करना है.
6. जब वर्षा का बीच होता है और मूसलाधार पानी पड़ता है और धूंध छाई रहती है, उस समय यह शक होता है कि पृथ्वी पर धूप से ····जो दिन होते हैं वह कल्पना-मात्र है या सत्य है.
7. दूल्हे के बैठने के लिए जो स्थान था, उसके दोनों बगल में बढ़िया ····के तकिये थे.
8. जिन ····ने रानी के साथ जाने की जिद की उन्हें उन्होंने साथ चलने की आज्ञा दे दी.
9. इस समय यहाँ की सभी बातें और परिस्थितियाँ ····के पक्ष में थीं.
10. उसका हाथ स्वभावतः ····पर गया. उसकी भृकुटि टेढ़ी हो गई. उसने अपना निचला ओंठ दांतों तले दबा लिया.
11. किंतु महाराज की इच्छा ऐसे दासी-पुत्र को राज्य देने की नहीं है. महाराज ····हो गए हैं.
12. इस बात के बारे में यदि शत-प्रतिशत जानकारी प्राप्त करनी हो तो यह इस ····से मालूम हो सकती थी.
13. इसी लिए वह हिंदी को राष्ट्र-वाणी के रूप में ग्रहण कर उसके परिष्करण तथा उसमें विविध साहित्य के ····में दत्तचित्त हो गए.
14. तब तक भारत में ब्रिटिश शासन पूरी तरह दृढ़ता से स्थापित हो चुका था और अंग्रेजी संस्कृति, साहित्य और कला का प्रभाव भारतीय ····और सामाजिक जीवन पर बड़ी तीव्रता से पड़ने लगा था.

यहाँ से काटिए

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 36 (पूर्ति-कूपन)

शब्दों के प्रत्येक जोड़े में से जो शब्द आप गलत समझें, उस पर × का चिन्ह बना दें. यदि आप केवल एक ही पूर्ति भरें, तो दूसरी पूर्ति को काट कर दें.

1	दया	दृश्य	1	दया	दृश्य
2	वैद्य	वैश्य	2	वैद्य	वैश्य
3	जल	फैल	3	जल	फैल
4	ग्रस्त	त्रस्त	4	ग्रस्त	त्रस्त
5	मानदंड	मापदंड	5	मानदंड	मापदंड
6	उत्तप्त	उद्दीप्त	6	उत्तप्त	उद्दीप्त
7	मखमल	मलमल	7	मखमल	मलमल
8	सैनिकों	सेवकों	8	सैनिकों	सेवकों
9	क्रांति	शांति	9	क्रांति	शांति
10	कटार	कमर	10	कटार	कमर
11	क्रुद्ध	वृद्ध	11	क्रुद्ध	वृद्ध
12	मुगल	महल	12	मुगल	महल
13	अर्जन	सर्जन	13	अर्जन	सर्जन
14	मानव	मानस	14	मानव	मानस

पूर्ति क्रमांक :. . . . कुल पूर्ति संख्या :. . . . पूर्ति क्रमांक :. . . . . कुल पूर्ति संख्या :. . . .

इस प्रतियोगिता में भाग लेते हुए मुझे प्रतियोगिता के सभी नियम व शर्तें पूर्णतया स्वीकार हैं.

नाम व पूरा पता (स्याही से) :_____

_____

_____

पोस्टल आर्डर / मनी आर्डर रसीद / नकद रसीद / का नंबर : . . . . . .

यहाँ से काटिए

सभी पूर्तियां बंबई कार्यालय में पहुँचने की अंतिम तिथि : सोमवार 8-11-1971

पूर्तियां भेजने का पता: 'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 36, प्रतियोगिता विभाग, पोस्ट बैग नं. 207, टाइम्स आफ इंडिया भवन, बंबई–1.

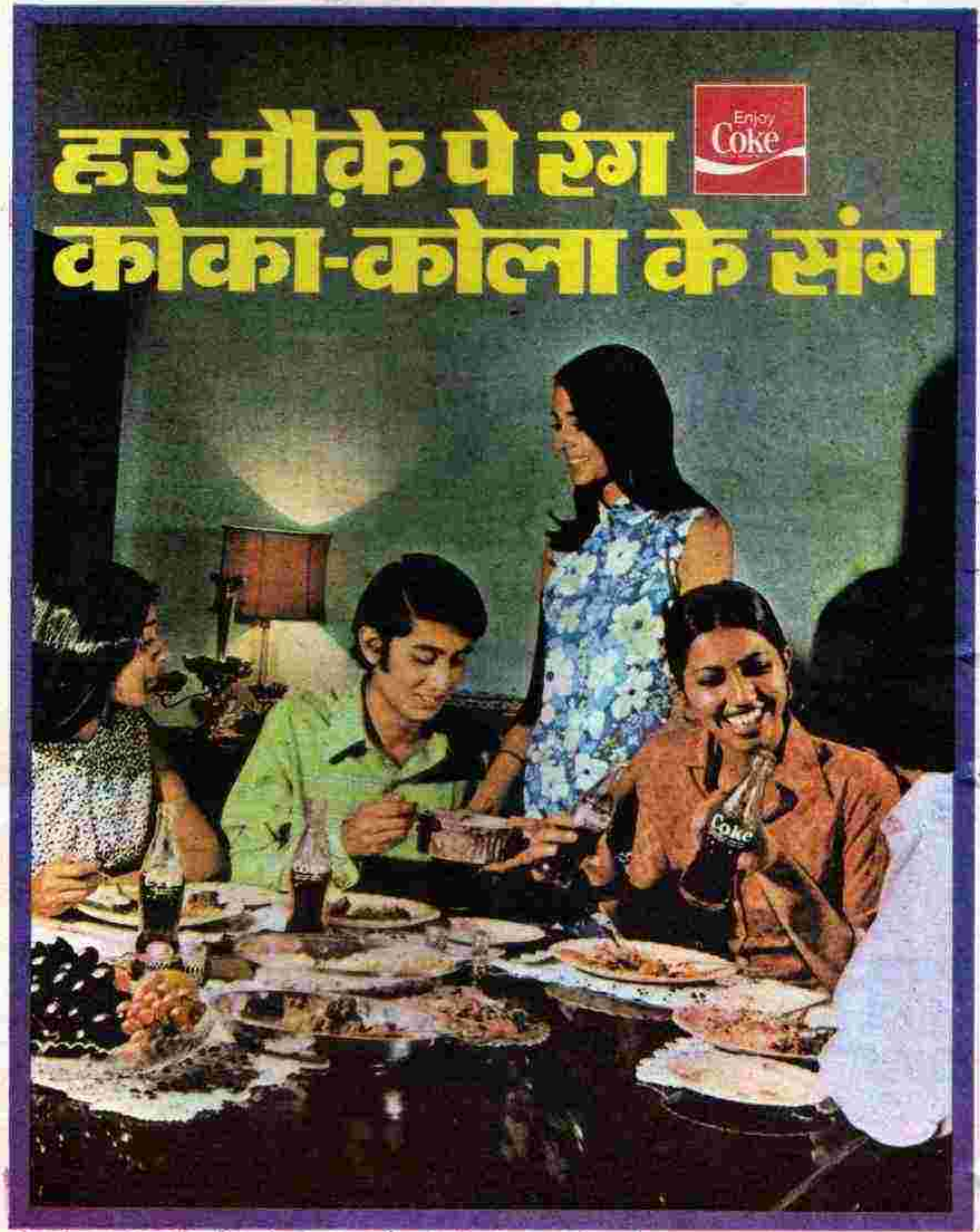

कोका-कोला कंपनी द्वारा रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क "कोका-कोला" और "कोक" एक से उत्पादन के दो नाम हैं

CMCC-24-20145 HIN

क्या जासूसी ··· (पृष्ठ 29 से आगे)

वह सब मेरे लिए बेहद नया था. उसके पहली पढ़ी जाती रही राक्षसों, फ़रिश्तों और भूत-प्रेतों की कथाओं से ज्यादा विश्वसनीय, ज्यादा यथार्थ. धीरे-धीरे मेरा बचकानी परीकथाओं से विश्वास उठता गया और जासूसी उपन्यासों पर जमता गया. उस ज़माने में पढ़े 'जासूसी दुनिया' के अंकों ने मुझे बहुत झकझोरा. इसी लिए तब पढ़े हुए कथानक मुझे अब तक याद हैं.

वे किताबें अश्लील नहीं हुआ करती थीं. मां ने उन्हें पढ़ रखा था. पिता जी ने अपने छुटपन में जासूसी किताबों के नाम पर 'नीलम हार' और 'रंगीला राजकुमार' जैसे विदेशी उपन्यासों के देशी संस्करण ही पढ़े थे. वह 'जासूसी दुनिया' को भी 'फ़ुहश और फ़ुज़ूल' मानते और उन्हें मेरे हाथ में देखकर कुढ़ते.

घर में उर्दू की 'बीसवीं सदी' जैसी 'बड़ों' की कहानियों की और 'खिलौना' जैसी बच्चों की कहानियों की पत्रिकाएं भी आतीं और ढेर सारी हिंदी पत्रिकाएं भी. वयस्कों की पत्रिकाएं मुझे नीरस लगतीं और नन्हे-मुन्नों की ('चंदामामा' जैसी) पत्रिका बचकानी!

तब मैंने सातवीं कक्षा पास की थी. अगले दो सालों तक 'जासूसी दुनिया' में मैं कल्पना को उकसाने वाली गर्मागर्म परोसता रहा. मेरे हाथों वेदप्रकाश काम्बोज, ओमप्रकाश शर्मा, और अकरम इलाहाबादी—उस ज़माने के तीन प्रसिद्धतम जासूसी लेखकों के उपन्यास भी लगे. मैंने उनमें भी रस लिया.

मेरे मन में एक सर्वज्ञानी, सुंदर और शक्तिमान जासूस की छवि थी, जिसे मैं एकांत में अक्सर अपने पर उतार लिया करता था.

तब भिंड मेरा कसबा था, जो डकैतों के इलाके में शुमार होता है. माह-दो माह में एक दो डाकू मारे जाते और उनकी लाशें जन-दर्शन के लिए सिटी अस्पताल के अहाते में रखी जातीं.

मुझे बहुत कौतूहल होता डाकू क्या करते हैं? कैसे मारे जाते हैं?

मुझे बताया जाता कि डाकू चम्बल के बीहड़ों में रहते हैं, मार-काट करते हैं, पुलिस को चकमा देते रहते हैं. उन्हें मारने में पुलिस वालों को दांतों पसीना आ जाता है.

मुझे ताज्जुब होता किताबों के जासूस तो चुटकी बजाते पढ़े-लिखे, महा खतरनाक, अंतर्राष्ट्रीय अपराधियों को साफ कर देते हैं . . .

उन्हीं दिनों चीन का हमला हुआ उसकी सनसनी में मैं अखबार पढ़ने लगा. जीवन की जटिलताओं से परिचय बढ़ा.

किशोर मानसिकता की तरफ मेरे पहले कदम थे. छुटपन की जादुई दुनिया से यथार्थ की खुरदुरी कचोटने, मगर समझ में न आने वाली दुनिया की तरफ.

जासूसी किताबों को पहली बार मैंने संशय की निगाह से देखा. वक्त के साथ यह संशय बढ़ता गया और उनसे मेरा मानसिक लगाव टूटता गया. क्योंकि उनमें वह सब नहीं था जो मैं अपने चारों तरफ देखता था और समझने की कोशिश करता था. मेरी कोशिश में उनका नकलीपन ज्यादा मदद नहीं कर पाता था.

●

यूं मेरा जासूसी किताबें पढ़ना कम नहीं हुआ. कालेज से थके-हारे लौटने पर या सफर या बीमारी में वक्त काटने के लिए मैं उन्हें उठा लेता. पढ़ते हुए उनमें दिलचस्पी बनी रहती. मगर कुछ दिनों बाद याद भी नहीं रहता कि क्या पढ़ा था.

मेरे सहपाठियों, सह-ऊर्मियों और पड़ोसियों में पिचहत्तर प्रतिशत किशोर-किशोरियां जासूसी उपन्यास पढ़ते थे, उनमें से निन्यानवे प्रतिशत पाठकों का जासूसी किताबों के प्रति वही रवैया था जो मेरा. दिलबहलाव के लिए पढ़ा और भूल गए. पढ़ाई के दौरान जिन तीन कसबों और दो शहरों में मैं रहा, मैंने यही मनःस्थिति देखी.

मुझे लगा कि छात्र-छात्राओं को तड़कीले बनाने में जासूसी उपन्यासों की जवाबदारी कम है. इसके लिए तथाकथित 'सामाजिक उपन्यास' और फ़िल्में ज्यादा जिम्मेदार हैं.

इयान फ्लेमिंग के जेम्स बांड के उपन्यासों की बेपनाह लोकप्रियता के बावजूद 007 का 'क्रेज' उन पर आधारित 'डा. नो' और 'फ्राम रशिया विद लव' जैसी फिल्मों के बाद ही चला.

मगर एक उम्र तक आते आते उनका भी प्रभाव जाता रहता है.

दरअसल जासूसी उपन्यासों से अच्छे या बुरे काम के लिए स्थायी रूप से प्रेरणा पाने वाले किशोरों की तादाद बहुत कम होती है.

उनके चरित्र निर्माण में वे उपन्यास ज्यादा सहायक हो सकेंगे, जिनके पात्रों और घटनाओं से वे खुद को जुड़ा हुआ महसूस कर सकें, और जिनसे अपने संघर्ष में मदद पा सकें.

उदाहरण के लिए चन्दर के उपन्यास उठाए जा सकते हैं. 'नीले फीते का जहर' में ब्लू फिल्में बनाने वालों की काली करतूतों का पर्दाफाश किया गया था. सहज जिज्ञासु छोकरा सुरिन्दर और आफिस का एक साधारण क्लर्क हरकिशन अपने मोहल्ले की एक नौकरीपेशा लड़की कनक के साथ हुए किसी 'घोटाले' की बू सूंघते-सूंघते खौफ़नाक अपराधियों से जा टकराते हैं. इसी लेखिका के सिरजे हुए पात्र 00½ राम और श्याम (उपन्यास—डबल सीक्रेट एजेंट 00½) किशोरवय के जासूस हैं जो अपने कारनामों से बड़े-बड़े खूंखार मुजरिमों के कान काट लेते हैं. चन्दर की इन रचनाओं के कथानक मौलिक और पात्र एकदम नए हैं. इनका इस्तेमाल भी विषय के अनुरूप बेहद स्मार्ट भाषाशैली से हुआ है. जासूसी के अभियानों में सहज ही उत्पन्न होने वाली स्थितियों की नाटकीयता को उभारने में इससे बहुत मदद मिली है. लेखिका को आत्मरक्षा और आघात की गैर मशहूर मगर आधुनिकतम तकनीकों की अच्छी जानकारी है, जो उसने राम और श्याम जैसे अद्भुत क्षमता वाले जासूसी पात्र गढ़ने में इस्तेमाल की है. राम और श्याम को लेखिका ने जन्मजात प्रतिभाशाली होने के साथ साथ वैज्ञानिक रीतियों से किए गए कड़े अभ्यास से निखरा हुआ बताया है. इससे उनके कारनामे आश्चर्यजनक लगने के बावजूद अविश्वसनीय नहीं लगते और अच्छी तर्कबुद्धि वाले किशोर को भी बांधे रख सकते हैं.

●

यह भी सच है कि जासूसी किताबें बाल्यावस्था या किशोरावस्था के पाठकों पर गहरा असर करती हैं—चाहे उम्र कुछ बड़ी होते होते यह असर हल्का पड़ने लगता हो. . . . और भुक्तभोगी जानते हैं इस असर के मायने. जासूसों की तरह रहस्यमय भाषा बोलना, बाल की खाल निकालना, चुस्त और मज़ाकिया दिखने की कोशिश करना और 'अपराधियों' से दो दो हाथ करने के सपने देखना. छुटपन की एक घटना मुझे याद है जब अपने आप को 'राजेश' मानने वाला दुबला-पतला लड़का क्लास में मस्ती करने वाले एक 'दादा' से भिड़ गया था और उसे तीन-चार 'सालिड' हाथ जमा कर चम्पत हो गया था. बाद में 'दादा' ने उससे दोस्ती कर ली और क्लास में धमाचौकड़ी बंद कर दी.

चुस्त, साहसी और स्मार्ट बनने की प्रेरणा दे सकने में जासूसी उपन्यासों का कम योगदान नहीं है. अधिक कुशलता और तार्किकता से लिखे गए जासूसी उपन्यास इससे भी ज्यादा प्रभावशाली हो सकते हैं, और अपने पाठकों को अध्ययन आविष्कार और मौलिक चिंतन की ओर प्रवृत्त करने के साथ साथ उन में सामाजिक चेतना जगा सकते हैं.

—शाहिद अब्बास अब्बासी

72, होस्टल, आई. आई. टी. पवई, बम्बई-76.

लोकप्रिय नायिका :

मुमताज़

'पराग' के लिए एक विशेष भेंट-वार्ता

चर्नी रोड पर भटकते हुए दो व्यक्तियों ने एक सरदार जी से पूछा, "सरदार जी, यह घोबकर लेन किधर है. . .?"

सरदार जी ने कुछ देर सोचने की मुद्रा बनाई फिर बोले, "सिद्धे चले जाओ. . . ओये ओपेरा हाउस मिलेगा. . . फिल्म 'दो रास्ते' लगी है. . . वा. . . की फिलम है. . . मुमताज ने गजब किता है. . . की नाचदी हाये–'तैंने काज्जल लगाया दिन तों रात्त हो गई . . .' वा वा 'चूड़ी खनकेगी' भी इसी फिल्म में है . . . अरे ओ बाश्शाओ, मुमताज का नाम लिया भग लिए. . . सुणो तो. . . ."

पता नहीं वह सरदार जी मुमताज के बारे में और भी क्या-क्या बताना चाहते थे. उन भटके हुए मुसाफिरों को धोबकर लेन मिली होगी या नहीं, मगर फिल्मिस्तान स्टुडिओ में जब हमें मुमताज मिलीं तो सीधे हमने सवाल किया, "पब्लिक आज आपकी इतनी दीवानी हो उठी है. . . आपको कैसा लगता है?"

"मैंने कई बार कोशिश की है मुझे कुछ लगे, मगर लाख चाहने पर भी अपने बारे में कुछ नहीं सोच पाती," उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया. "सच पूछिए तो मुझे कुछ भी नहीं लगता. . . हां, इस बात से खुशी होती है कि पब्लिक मुझे और मेरे काम को पसंद करती है."

मुमताज के बारे में फिल्म-उद्योग के जो लोग अच्छी जानकारी रखते हैं, उनकी मान्यता है कि वह फिल्म क्षेत्र का एक 'खूबसूरत आश्चर्य' है. इसी 'आश्चर्य' की बात छेड़ते हुए हमने जब उन्हें 'पराग' के पाठकों के सामने उपस्थित होने को कहा, तो वह बोलीं, "ना बाबा ना, मेरे पास ऐसी कोई बात नहीं जो किशोर उम्र के लड़के-लड़कियों के लिए जाननी जरूरी हो. बल्कि मुझे डर है, कहीं वे गलत रास्ते पर न भटक जाएं. . ."

"मतलब. . .?"

"यही कि," उन्होंने कहना शुरू किया, "मैं पढ़ाई-लिखाई से कोसों दूर रहने वाली लड़की थी और हर दम फिल्मों में काम करने की बात सोचती रहती. . . अब बताइए, इस बात से 'पराग' के पाठक क्या सबक लेंगे. . ."

"जरूर लेंगे," हमने कहा. "ऐसे किशोरों की कम तादाद नहीं, जो पढ़ाई-लिखाई में कम ध्यान देते हैं और ऐक्टिंग पर ज्यादा. . ."

इस उत्तर पर मुमताज को बोलना ही पड़ा. यह भी अच्छी बात थी कि वह फुर्सत में थीं और जिस सेट पर उन्हें जाना था उसमें लाइटिंग वगैरा की व्यवस्था चल रही थी. कुछ देर वह चुपचाप रहीं, फिर बोलीं, "फिल्मों में काम करने की प्रेरणा मुझे अपने घर से मिली. . . मेरी मां ने कई फिल्मों में काम किया था और मेरी बड़ी बहन मलका को भी फिल्मों में काम मिलने लगा था. यूं मुझे स्कूल भेजा जाता था, मगर मेरा मन हमेशा फिल्मों की ही तरफ भागता रहता. मैं जानबूझ कर स्कूल जाने वाली बस में चढ़ने से चूक जाती और घर लौट आती. . ."

अपनी इस बात पर उन्होंने स्वयं ठहाका लगाया, फिर उनके मुंह से अपने आप जैसे उनकी स्मृतियां मुखर होने लगीं, "घर वालों ने मेरी यह चाल समझ ली. अब बाकायदा मुझे बस में चढ़ाने कोई न कोई आता. . . मगर मैं भी कम न थी, मैंने दूसरी चाल चली. स्कूल से छुट्टी होती, तो मैं अपनी आंटी के यहां चली जाती और जानबूझ कर उनके घर अपना बस्ता भूल आती. दूसरी सुबह 'बगैर बस्ते के स्कूल कैसे जाऊं' कह कर चारपाई पर जा लेटती. . ."

तो यह थी बचपन में मुमताज. आज भी उसका बचपना बरकरार है, भले ही वह ऊंचे दर्जे की हीरोइन बन गई है. किसी भी क्षेत्र में ऊंचा बनने के लिए सिर्फ चाहने से कुछ नहीं होता, उसके लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है. मुमताज ने यही किया. बचपन में भले ही वह फिल्म कैरियर के बारे में सोचती रही हो, मगर उसके बारे में स्वयं उसके घर वाले भी कल्पना नहीं कर सकते थे कि वह हीरोइन की बात तो दूर रही, कभी मामूली एक्स्ट्रा का रोल भी कर सकती है या नहीं.

मुमताज की खूबसूरती में हमेशा उसकी नाक आड़े आती. स्वयं मुमताज भी अपनी नाक को लेकर काफी लंबे समय तक परेशान रही. मगर एक दिन एक अनुभवी निर्देशक ओ. पी. रल्हन ने उसकी आंखों में इरादों की दृढ़ चमक को पहचान लिया. मुमताज की खुशी का ठिकाना न रहा, जब उसे फिल्म में एक छोटा-सा रोल दे दिया गया. नाक से ज्यादा आंखें काम दे गईं!

"मगर," वह बताती है, "मेरी सारी खुशी पर जैसे पानी फिर गया. मैंने देखा, मेक-अप से लैस मैं सेट के एक कोने में खड़ी हूं, कोई मेरी तरफ ध्यान नहीं दे रहा है. मेरी तकलीफ उस वक्त और ज्यादा बढ़ गई, जब मैंने देखा, हीरोइन के सेट पर आते ही चारों तरफ हलचल-सी मच गई. जिसे देखो वही उस को खुश करने की अपनी-अपनी तरफ से कोशिश कर रहा है . . . डायरेक्टर, प्रोड्यूसर सब के सब. . . मैं कोने में खड़ी-खड़ी यह तमाशा बड़ी देर तक देखती रही. . . मन ही मन एक उबाल-सा उठने लगा. चाहे कुछ हो, एक दिन मैं ऐसी ही ऊंची हीरोइन बन के रहूंगी. . . जरूर बनूंगी . . ."

बस यही जोश था, जिसने मुमताज को बड़े संघर्ष की प्रेरणा दी. कदम कदम पर उसे जूझना पड़ा. फिल्में मिलनी शुरू हुईं तो मामूली दर्जे की. मारधाड़ से भरी स्टंट फिल्मों की हीरोइन के नाम से वह हर जगह जानी जाने लगी. ज्यादातर उसकी फिल्में दारासिंह के साथ ही बननी शुरू हुईं. सामाजिक फिल्म बनाने वाले उसकी तरफ देखना भी पसंद न करते. . . .

"लेकिन मैं नाउम्मीद नहीं हुई," वह कहती है, "सचमुच इनमें कई फिल्में ऐसी थीं जिन्हें मैं खुद देखना पसंद न करती थी. मगर इसलिए उनमें काम करना मंजूर करती चली गई कि मैं बेकार बैठकर उम्मीदों के महल खड़े करना नहीं चाहती थी. . . फिर मैंने अपने मन को यह तसल्ली दे ही रखी थी कि फिल्म चाहे कैसी हो मेरा काम बेहतर से बेहतर होना चाहिए. . ."

पर शीघ्र ही दारासिंह की फिल्मों का युग भी बीत गया. मुमताज के आगे फिर एक नया संघर्ष मुंह बाये खड़ा था. अब वह सामाजिक फिल्मों में छोटे-मोटे साइड रोल करने लगी. अक्सर वह हास्य अभिनेता महमूद की प्रेमिका के रूप में कई फिल्मों में दिखाई देती. फिल्म उद्योग में जहां किसी अभिनेत्री या अभिनेता को एक प्रकार के रोल में सफलता मिली नहीं कि समझिए अब वह जिंदगी भर पिटे-पिटाए एक-से रोल में 'टाइप्ड' हो गया. मगर मुमताज इस बारे में अपवाद निकली. उसकी अभिनय कला ने शीघ्र ही निर्माता निर्देशकों को प्रभावित करना शुरू कर दिया और एक दिन दर्शकों ने उसे महान कलाकार दिलीपकुमार की प्रेमिका के रूप में फिल्म 'राम और श्याम' में देखा. बस यहीं से उसकी वह सफलता शुरू हुई जिस

←छायाकार : 'पराग' कला विभाग

का सपना उसने कभी किसी सेट के कोने में देखा था.

कई बार मुमताज अत्यंत अल्प वस्त्र पहने किसी सागर-तट पर खड़ी दिखाई देती है; ऐसे चित्र कई पत्रिकाओं में पाठकों ने देखे होंगे. मैंने यही बात ध्यान में रखते हुए उनसे पूछा, "इससे फायदा . . .?"

वह पहले मुस्कराई, फिर खिलखिलाई, इसके बाद जो बोलीं वह इस प्रकार था: "मेरी तस्वीरों को कौन किस भावना से देखता है, यह तो मैं नहीं जान पाऊंगी, मगर इतना जरूर है, अगर कोई कलाकार की दृष्टि से उन्हें देखे तो उनमें किसी भी प्रकार की गंदगी नहीं मिलेगी. . . मगर यह मत समझिए मैं अर्द्धनग्न तस्वीरों की वकालत कर रही हूं . . . अगर इनसे लोगों पर बुरा असर पड़ता है, तो मैगजीन वालों को चाहिए वह उन्हें छापें ही नहीं. . ."

यह सवाल ऐसा था जो घंटों लंबी बहस का मसाला बन सकता था, मगर वक्त की कमी के कारण बात आगे न बढ़ सकी. सेट तैयार होने की सूचना आ चुकी थी.

अगर आप मुमताज को नजदीक से देखें, तो वह बड़ी चुलबुली और मजाक-पसंद लगेगी. उन दिनों की बात है जब कुछ अभिनेत्रियों की शादी की चर्चा जोरों पर थी. मुमताज ने एक पत्रकार को बताया, वह भी शादी करने वाली है. जब वह बंबई से मद्रास हवाई जहाज पर जा रही थी, तो पास की सीट पर बैठे एक युवक से उसका रोमांस हो गया. . .यह खबर जोरों से फैली. बात क्या है, यह जानने के लिए जब हम उसके पास पहुंचे तो बोली, "ना बाबा ना, यह सब बात झूठ है. . . मैं भला क्यों किसी से रोमांस करूंगी. . . सबकी शादी ऐसे ही रोमांस की वजह से हो रही थी, सो मैंने भी मसखरी कर दी. . ."

"मुमताज से रोमांस करना बहुत ही 'डिफिकल्ट' काम है," एक प्रसिद्ध अभिनेता ने एक बार बताया था. "उस लड़की को कोई नहीं समझ सकता . . . बाहर से वह कितनी ही चुलबुली लगे, मगर भीतर बहुत गंभीर है. . . इसलिए इतनी बड़ी आर्टिस्ट है."

मगर भीतर से चाहे वह कितनी ही गंभीर क्यों न हो हमें तो वह हमेशा किशोरी-सी चंचल लगती है. जब उसे 'पराग' का नया रूप दिखाया, तो उसे बड़ा पसंद आया. क्षण भर के लिए वह जैसे अपनी किशोरावस्था में लौट गई—कितनी स्वप्निल अवस्था होती है, कितना निश्चिंत जीवन होता है. तब बड़ी देर तक वह 'पराग' के पृष्ठ पलटती रही, फिर उसके मुंह से निकला, "बहुत सुंदर मैगजीन है, फुर्सत मिलते ही जरूर पढ़ूंगी. . ."

और हम अल्लाह से यही दुआ करते चले आए कि वह थोड़ी-बहुत फुर्सत के क्षण जरूर मुमताज को इनायत करे.

—हरीश तिवारी

गुप्त का इनाम

एक पोस्टकार्ड पर कुछ भी लिखिए—वाही-तबाही बकिए, खुशामद कीजिए, धमकाइए, मजाक उड़ाइए, कसमें खाइए, सवाल कीजिए, चकराइए, भरमाइए, व्यंग्यपूर्ण आलोचना कीजिए—लेकिन हां सब शालीनता की सीमा के अंदर-अंदर! उद्देश्य है विशुद्ध मनोरंजन! प्रकाशित कार्डों में से एक चुने हुए श्रेष्ठ कार्ड पर पंद्रह रुपए की पुस्तकें प्रति मास पुरस्कार में दी जाएंगी. देखें आपकी बुद्धि कितनी कुलांचें भरती है. यदि आपको विश्वास है कि यह इनाम आपको मुफ्त में ही मिल जाएगा, तो अपना कार्ड इस पते पर भेजना हरगिज न भूलिए: संपादक 'पराग', (मुफ्त का इनाम-2), 10 दरियागंज, दिल्ली-6.

कोलगेट डेन्टल क्रीम से
सांस की दुर्गंध रोकिये...
दंतक्षय का दिन भर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के मुंह की दुर्गंध को लगातार खत्म कर देता है और कोलगेट विधि से खाना खाने के तुरंत बाद दांत साफ करने पर अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८४ घंटों तक रोगाणुओं को दूर कर देता है। केवल कोलगेट के पास यह प्रमाण है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है— इसलिए बच्चे भी निश्चिंत भाव से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ करना पसंद करते हैं।

COLGATE
DENTAL CREAM

इसका साफ के वैज्ञानिक तरीके और न्यूनतम मूल्य दोनों के लिए दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही खरीदते हैं।

शरारत पकड़ी गयी

CHAG-146-R-203 HIN

यह कमाल है "निशाना साधो, फोटो खींचो" कैमरा आग्फ़ा क्लिक III का

शुरू करने के लिए उत्तम, साथ देने में सर्वोत्तम !

* बस निशाना साधो और फोटो खींच लो। हेरफेर (एडजस्टमेंट्स) की ज़रूरत नहीं — गलती की संभावना नहीं !
* हर १२० रॉल पर (६×६ सें. मी. की) १२ बड़ी तस्वीरें खींच सकते हैं।
* एवर-रेडी केस, पोर्ट्रेट लेन्स तथा फ़्लेशगन के दाम अलग। साफ़ सुहाने प्रिण्ट्स एवं एनलार्जमेंट्स के लिए आग्फ़ा फोटो पेपर्स ही इस्तेमाल करें।

ये सभी अधिकृत आग्फ़ा विक्रेताओं के यहाँ मिलते हैं।
आग्फ़ा गेवर्ट – ए. जी. लिवरकुसेन के सहयोग से भारत में बनाने वाले
दि न्यू इंडिया इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, बड़ौदा

रिटेल कीमत : रु. ५६.२५
एक्साइज ड्यूटी मिला कर;
अन्य कर अतिरिक्त।

एकमात्र वितरक :

आग्फ़ा - गेवर्ट इंडिया लिमिटेड

बंबई • नयी दिल्ली • कलकत्ता • मद्रास

आग्फ़ा-क्लिक — भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय कैमरा

® यह फोटोग्राफी संबंधी उत्पादनों के निर्माता आग्फ़ा - गेवर्ट एक्टिएनगेसेलशाफ्ट/ लिवरकुसेन का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क.

Regd. No. D-789.

www.kissekahani.com

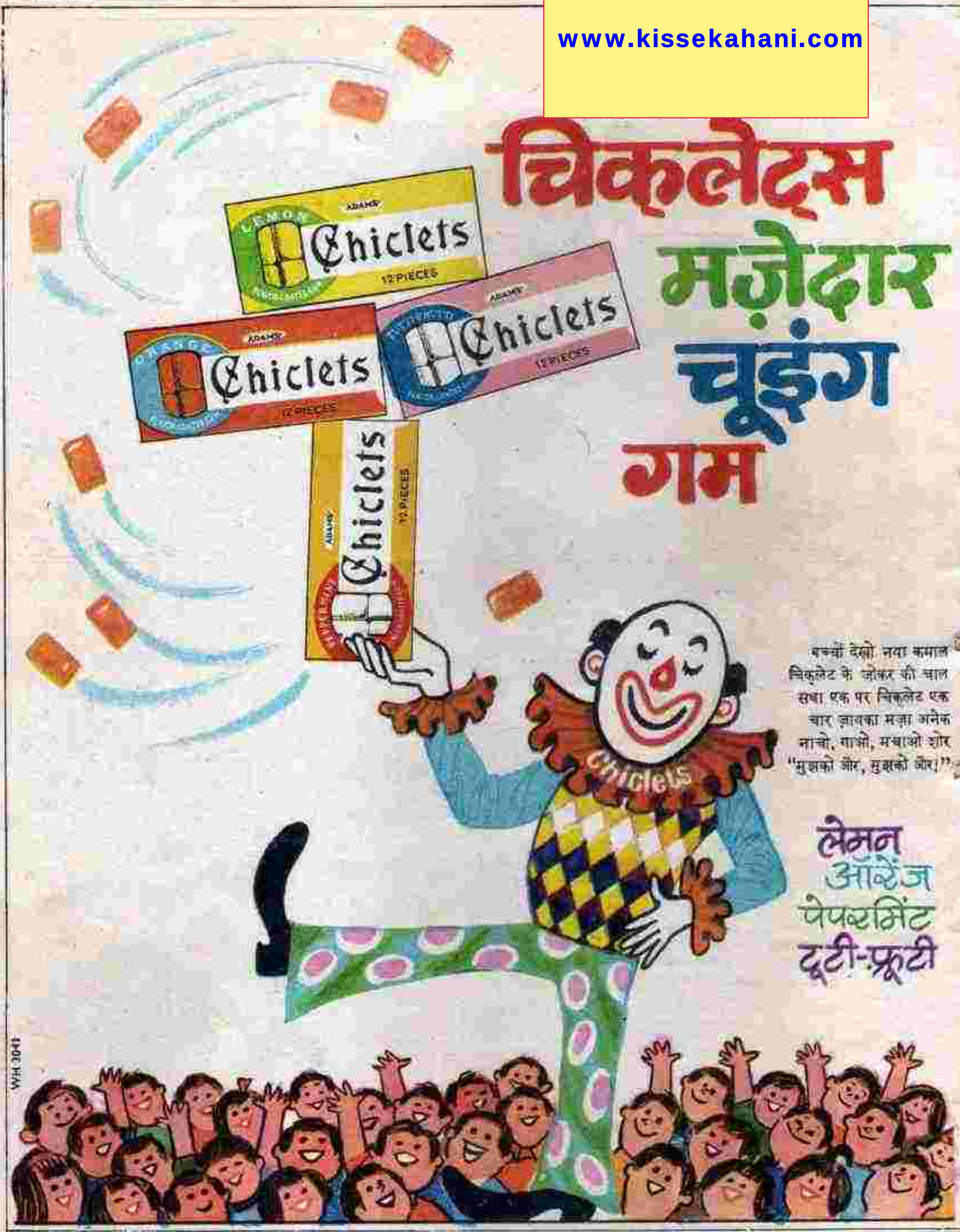

ढैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चंद्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, दिल्ली-6, से मुद्रित और प्रकाशित.
बंबई आफिस: दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई-1; कलकत्ता आफिस: 13/1 और 13/2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट; लंदन आफिस: 3, अल्बे मार्ले स्ट्रीट, डब्ल्यू-1.

www.kissekahani.com

अध्यापक महोदय द्वंद्वातीत की व्याख्या कर रहे थे—"द्वंद्व ऐसे जोड़े को कहते हैं, जिनमें परस्पर विरोध रहता है. उदाहरण के लिए जैसे सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, धूप-छांव. अच्छा अब कोई विद्यार्थी ऐसा ही उदाहरण दे."

"पति-पत्नी!" एक छात्र का उत्तर था.

●

एक महाशय किसी देश के बारे में भाषण करते हुए बोले—"वहां की आबादी इतनी अधिक है कि आदमी की जान की कोई कीमत नहीं है. वहां फांसी की सजा पाये लोग कुछ रकम देकर अपनी जगह किसी और को फांसी पर लटकने के लिए तैयार कर लेते हैं! हजारों लोग इसी पेशे से अपनी जीविका चलाते हैं!"

●

अगर कोई नेता 'हां' कहे तो उसका अर्थ होता है—शायद. अगर वह 'शायद' कहे, तो उसका अर्थ होता है—नहीं. और अगर वह 'नहीं' कहे, तो समझो वह नेता ही नहीं है !

●

टेलीफोन आपरेटर—"बंबई से ट्रंक-काल पर बातचीत करने के तीन मिनिट में आपको पांच रुपए बीस पैसे देने पड़ेंगे!"

बात करने का इच्छुक : "बात यह है कि ट्रंक-काल पर मैं अपनी पत्नी को बुलाना चाहता हूं और इस बात का वादा करता हूं कि अपनी ओर से एक शब्द भी नहीं कहूंगा, सिर्फ सुनता रहूंगा ऐसी, हालत में मुझे क्या रियायत मिलेगी?"

●

एक डाक्टर अपने रोगियों को दवाई के साथ-साथ आध्यात्मिक उपदेश देने के भी आदी थे। एक रोगी को जब दवाई दे चुके, तो डाक्टर ने उससे पूछा—"अच्छा यह बताओ, स्वर्ग पाने के लिए हमें क्या करना चाहिए?"

"मरना चाहिए!"

"लेकिन मरने से पहले क्या करना चाहिए?"

"आपसे मिलना चाहिए!" रोगी बोला।

●

मोटर मालिक ने गैरेज तक कार ले जाकर पूछा—"ब्रेक ठीक करवाने में कितने रुपये लगेंगे?"

"आज सौ रुपये, कल तीन सौ रुपये!"

"यह तो सरासर लूटने की बात हुई!"

"नाराज न हों, साहब, कल तक आपको इसके सामने का बंपर भी तो ठीक करवाना पड़ेगा," गैरेज मैनेजर ने समझाया.

●

रेडियो पर खोये व्यक्तियों की सूचना प्रसारित हो रही थी कि एकाएक रेडियो केंद्र को फोन पर किसी ने सूचना दी—

"श्रीमान्, एक साल हो गया मुझे घर वापस आए हुए कृपया अब तो गुमशुदा लोगों की सूची में से मेरा नाम हटा दीजिए!"

●

प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो ने अपने मित्रों को दावत पर घर बुलाया किंतु मित्रों को यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि दीवार पर पिकासो का बनाया हुआ एक भी चित्र नहीं था. उन्होंने पिकासो से पूछा—"तुम्हें क्या अपने चित्र पसंद नहीं? यहां तुम्हारा बनाया हुआ एक भी चित्र नहीं है?"

"पसंद तो है," पिकासो ने कहा, "लेकिन वे इतने महंगे हैं कि उन्हें रखना मेरे बूते के बाहर की बात है!"

●

कबाड़ी की दुकान पर हारमोनियम, तबला, वायलीन और सारंगी के साथ दुनाली बंदूक भी बिक्री के लिए रखी देखकर एक सज्जन दुकानदार से पूछ ही तो बैठे कि आखिर इन चीजों के साथ बंदूक रखने की क्या तुक है?

कबाड़ी ने बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया—"देखिए, जिस दिन कोई नौसिखिया इनमें से कोई बाजा खरीद कर ले जाता है, तो दो दिन बाद ही उसी का पड़ोसी हमारे पास बंदूक की मांग करता हुआ आता है!"

●

"गुरुदेव! यथार्थ और भ्रम का अंतर स्पष्ट कर दें. तो बड़ी कृपा होगी," प्रवचन करते हुए एक संत से एक भक्त ने कहा.

"आपका यहां उपस्थित रहना और मेरा प्रवचन करना यथार्थ है. पर मेरा यह सोचना कि मेरी बात पर आप ध्यान दे रहे हैं, भ्रम है!" संत ने समाधान प्रस्तुत किया!

●

किराएदार ने बड़े गर्व से कहा—"जब मैं अपना पुराना मकान छोड़कर यहां आने लगा, तो उसका मालिक बहुत रोया था!"

नया मकान मालिक—"आप बेफिक्र रहें, मैं नहीं रोने का, क्योंकि मैं छह महीने का किराया एडवांस जमा करा लेता हूं!"

●

जनरल स्टोर की दूकान से चोरी करने के आरोप में पकड़े गए व्यक्ति से जज ने पूछा—"तुम्हें अपने बचाव में कुछ कहना है?"

अभियुक्त ने उत्तर दिया—"बस, इतना कि फैसला सुनाने से पहले आप इतना जान लें कि मैंने स्वदेशी वस्तुओं को ही हाथ लगाया था, विदेशी वस्तुओं को छुआ तक नहीं!"

—कि. र. टंडन

शीर्षक प्रतियोगिता नं० 29
परिणाम

पुरस्कार विजयी शीर्षक :

पानी खींचें प्यासे होंठ,
जैसे लीडर मांगे वोट!

प्रेषक :

नलिन गुप्ता, सुपुत्र श्री ओ. पी. गुप्ता,
एम. 19/1, ग्रूट लैंड रोड, देवलाली,
नासिक (महाराष्ट्र)

अन्य प्रशंसित शीर्षक :

- नगर महापालिका बनाम मृगमरीचिका
  —अभिलाषचंद्र अवस्थी, कानपुर.

- दो प्यासे
  —विनयकुमार वर्मा, अजमेर.

- कौन किसे पानी देता है,
  प्यास किसी की किसने जानी?
  अपनी मदद आप करते हैं
  इस अणु-युग के बच्चे ज्ञानी!
  —संगीता शंकर, नई दिल्ली.

- मुंह-दर-मुंह
  —सुमन मित्तल, आगरा.

- माडर्न मिनी अगस्त्य
  —कु. कनकलता गोयल, मैनपुरी.

छाया : एस. मूलशंकर

शीर्षक प्रतियोगिता-३२

ऊपर के चित्र को देखिए और जरा सोचकर इसका एक बढ़िया और फड़कता हुआ शीर्षक बताइए. अपने उत्तर एक सब से अलग पोस्ट-कार्ड पर लिखकर हमें 20 अक्तूबर तक भेज दीजिए. सबसे बढ़िया शीर्षक पर 15 रुपये मूल्य की पुस्तकें पुरस्कार में मिलेंगी. हां, कार्ड पर अपना नाम और पता लिखना मत भूलिए. शीर्षक के कार्ड इस पते पर भेजिए : **संपादक, 'पराग' (शीर्षक प्रतियोगिता-32), 10, दरियागंज, दिल्ली-6.**